एक हज़ार वर्ष बाद

लेखक काका गाडगील

प्रकाशक

रणजीत प्रिन्टर्स एगड पन्तिशर्स चाँदनी चौक, देहली।

नालकृष्ण एम॰ ए॰ द्वारा युगान्तर प्रेस, डफ़रिन पुल, देहली में मुद्रित ।

काका अस्डिमिस

माननीय पंडित नरहर विष्णु गाडगील को इम लोग 'काका' कहते ं हैं। हमारे देश में श्रभी तक दो 'काका' हुए हैं। एक हैं कालेलकर जी श्रीर दूसरे हैं गाडगील महाशय। कालेलकर कदाचित् बड़े काका हैं, क्योंकि स्वयं पुराय-श्लोक बापू उन्हें 'काका' कहा करते थे। गाडगील, समभ लीजिये, छोटे 'काका' हैं। पर हैं वे सर्व-स्वीकृत 'काका'। जहाँ तक मेरा त्रानुमान है, लौह पुरुष सरदार भी उन्हें 'काका' कहकर ही सम्बोधित करते हैं। गत तीन-चार वर्षों से मुक्ते काका को निकट से देखने का ग्रवसर मिला है। उनका व्यक्तित्व सरल, ग्राडम्बर-शून्य, श्रनहंकार-मय, कर्मठ, भावयुक्त एवं सहज है। वे बहुश्रुत एवं बहुपठित जन है। भारतीय राजनीति मे उनका स्थान ऊँचा है। वे परम देशभक्त हैं। देश के स्वातन्त्र्य-युद्ध में उन्होंने बहुत बड़ा भाग लिया है। वे तपे हुए, त्रानुभवी, कष्ट सहिष्णु, सेनानी हैं। वर्षों तक महाराष्ट्र प्रान्तीय **कांग्रेस** कमेटी के सभापति रहकर उन्होने अपनी कर्म-कुशलता का परिचय दिया है। गत पन्द्रह-सोलह वर्षों से भारत की केन्द्रीय व्यवस्थापिका समा के सदस्य के रूप मे वे अपने गहन संसदीय ज्ञान का परिचय देते रहे हैं।

जब से दिल्ली ऋाया हूँ — प्रायः भाड़ भोकने के लिए — तब से मुभे काका को सब ऋोर से देख सकने की सुविधा मिली। मैंने देखा कि काका न केवल राजनैतिक प्राणी ही हैं, वरन् वे एक ऋच्छे, साहित्यकार भी हैं। वे विचारक हैं। वे सुलेखक है। वे शैलीयुक्त हैं। मुभे इधर काका के कुछ निबन्धों को पढ़ने का ऋवसर मिला है। मराठी भाषा में उनकी गणना उच्च कोटि के लेखकों में होती हैं। उनकी लेखनशैली श्रात्यन्त परिपक्व, परिपुष्ट, मौलिक, पुरातन संदर्भयुक्त एव मर्म-स्पर्शिनी है।

इधर, इस पुस्तिका के रूप में, उनके ये कुछ निबन्ध हिन्दी पाठकों के सम्मुख उपस्थित किये जा रहे हैं। सुभी इन निबन्धों में से एक निबन्ध के कथानक को स्वयं काका के मुख से, कथा के रूप मे, सुनने का श्रवसर मिला है। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का श्रिधवेशन हो रहा था। एक दिन मध्याह्न-ग्रवकाश के समय मैं ग्रीर काका दोनों भोजनगृह मे जा बैठे श्रीर काका कहने लगे-- "वह कथानक जो इस पुस्तिका में ''न्यानू मरा नही" शिर्षक से लिपिबद्ध किया गया है।'' मैं तन्मय होकर सन रहा था। काका अपनी पवित्र, प्रवाह-युक्त, सुष्ठ मराठी में कहानी सुना रहे थे। श्रीर जब उन्होंने ग्यानू के पिता रामजी बुवा के ये शब्द कहे कि "ग्यानू मरा नहीं है, वह बच्चा बन गया है।" तो मैं बच्चों के सदृश रो पड़ा श्रीर बोला, "काका, श्राज तुमने यह कथा सुनाकर मुभ्ने कृतार्थ कर दिया।" मैं पाठको से कहूंगा कि वे काका साहब के इन निबन्धों को पहें श्रौर ध्यानपूर्वक पहें। वे इन्हें पढ़कर कृतार्थ हो जायेंगे। उन्हें यह अनुभव होगा कि इन निबन्धों में न केवल उच्च कोटि का साहित्य ही है, वरन् वे यह भी देख सकेंगे कि इन निबन्धों के लेखक तपस्तप्त, गहन ऋनुभूतिशील, कुशल, सामर्थ्यवान् एव लोकसंग्रही साहित्य-रथी हैं। एक-एक वाक्य मे गंभीर तत्त्वज्ञान को भर देने का उनमें श्रद्धत् सामर्थ्य है। काका श्रपनी लेखनी के धनी हैं। उनकी इस पुस्तिका ने निःसन्देह हिन्दी साहित्य की भी वृद्धि की है। हिन्दी के निबन्ध साहित्य में यह पुस्तक अग्रगण्य होगी-ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं काका के प्रति हिन्दी भाषा-भाषियों की छोर से, इस निबन्धावली को हिन्दी में रूपान्तरित करने के लिये, हार्दिक कृतज्ञता का प्रकाश करता हूँ। इन पंक्तियों को पढ़कर कोई भी पाठक यह न समक्त ले कि मैं काका के प्रति जो ये शब्द कह रहा हूं वह उनके प्रति पच्चपात से वशीभृत होकर

[ख]

कह रहा हूं। वन्ध्रवर डाक्टर वासुदेव शरण अप्रवाल एम ए., पी. एच. डी., डी. लिट. को समप्र हिन्दी जगत् अन्यतम निवन्ध-लेखक के रूप में स्वीकार करता है। उन वासुदेव जी ने स्वय मुक्तसे काका के 'एक इज़ार वर्ष बाद' वाले निवन्ध की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और कहा था कि ऐसी उच्च कोटि का साहित्यक-निवन्ध उन्हें अन्यत्र पढ़ने को नहीं मिला। सुक्ते पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी संसार इन निवन्धों का समुचित आदर करेगा और इन्हें पढ़कर सत्साहित्यानन्द का अनुभव करेगा।

भ्र, विंड्सर प्लेस, नई दिल्ली १३ नवम्बर, १६५०

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

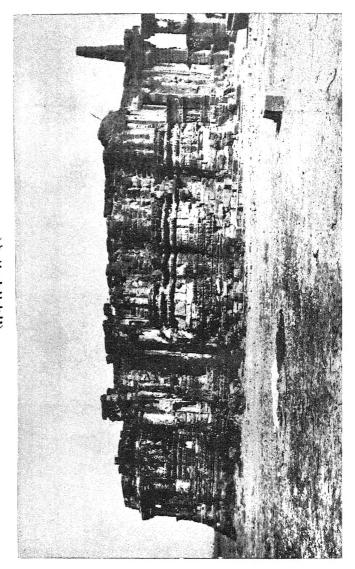
परिचय

१६४४ के ग्रगस्त मास में यरवदा जेल से मेरी रिहाई हुई । यरवदा जेल मे मैंने कुछ राजनैतिक सिद्धान्तो पर प्रन्थो का लेखन किया। रिहाई के बाद कांग्रेस का काम करता रहा श्रीर जब श्रवसर मिलता था तब कुछ-न-कुछ घटनात्रो को, जिनका अनुभव मैंने किया था, शब्दरूप में लाकर प्रकाशित किया। यह निबन्ध या लेख मैंने मराठी में लिखे थे श्रौर उनका संकलन 'साल ग़दस्त' इस नाम से १६४६ में प्रकाशित हुआ। मेरे कई मित्रो के कहने पर इन निबन्धों का हिन्दी में अनुवाद करने का निश्चय किया ऋौर श्री रत्नपारखी विद्यालंकार की मदद से मैंने बहुत सारे निबन्धों का ऋनुवाद किया। यह सब लेख दिल्ली के हिन्दी 'हिन्दुस्तान' में पिछले दो वधों में छप चुके हैं। इन सब लेखो का सकलन करके यह प्रन्थ प्रकाशित हुन्ना है। हिन्दी भाषा त्र्रब भारत की राजभाषा हो गयी है। अब तो सब भारतवासियो का यह कर्तव्य है कि इस राज-भाषा को प्रासादिक, ऋर्थवाही ऋौर विशाल बनावे । जो शैली इस प्रन्थ मे है वह हो सकता है कि कुछ हिन्दी साहित्यिकों को पसन्द न हो। मराठी जीवन का परिचय 'काव्यशास्त्र-विनोद' के वातावरण में हिन्दी जगत को देने का यह प्रयत्न है। मैं श्राशा रखता हूं कि जब कोई उदासीनता मन मे पैदा होती है स्त्रौर दिल दुखित होता है तो इस प्रन्थ के किसी पन्ने को पढने से मन उल्हासित होगा।

प्रबोधिनी एकादशी, कार्तिक सवत् २००७, नई दिल्ली न० वि० गाडगील

विषय-सूची

₹.	एक इजार वर्ष बाद	•••	•••	8
₹.	ग्यानू मरा नहीं, बच्चा बन गया है	•••	•••	२४
₹.	डिकसाल की धूल में	•••	•••	३३
٧.	क्या यही ऋवन्तिका पुरी है ?	•••	•••	४२
ч,	कांग्रेस का राज्य स्राया तो	•••	•••	प्र
ξ,	तब तो सभी मुनीर	•••	•••	६१
9 .	चलो यार लन्दन चलें	•••		६६
ς,	गेटीराम भैया	•••	•••	৩5
3,	श्रथ विमान मार्गेण	•••	•••	5 4
₹0,	क्या इमें भी मताधिकार रहेगा !	•••	•••	६ ६
११.	काश ! इम मानवता का सम्मान करते !	•••	•••	१०३
१२.	कबाड़ी बाज़ार मे 'लोक-तन्त्र'	•••	•••	१११
१३.	पड़ौस में चित्रशाला है न !	•••	•••	१२०
१४.	मेरी प्रथम श्रीर श्रन्तिम चोरी	•••	•••	१२⊏
	स्वर्गीय भूलाभाई देसाई	•••	•••	१३ट
	खटबुने की पुकार	•••	•••	१४६
	, नामदों को दुनिया जीने नहीं दैती		•••	१५६



मोमनाथ मन्दिर

एक हज़ार वर्ष बाद

66 मिंभे, क्या हो रहा है ?" मैंने जो टेलिफोन कान पर लगाया तो सुपरिचित श्रौर प्रमन्न श्रावाज में ये शब्द सुनाई पड़े। श्राजकल घर में टेलीफोन होना घर में गजान्त लद्मी होने के समान है। युद्धकाल मे पैदाइश कम स्रोर माग ज्यादा होने की वजह से सर्वत्र नियत्रकों का राज्य हो गया था। ये नियन्त्रका चन्द वर्षों तक ही जिन्दे रहेगे ऐसा माना जाता था, किन्तु ऋनुभव तो यह हो रहा है कि ये निय-त्रगा. ये कट्रोल सप्त चिरजीवियों के समान चिरजीव होने वाले हैं। घर में टेलिफोन होना प्रतिष्ठा, सत्ता व सम्पत्ति का चोतक रहा है। स्रब भी वही हालत है। श्रीर श्रगर वह टेलिफोन मुफ्त में मिला हो तो कहना ही क्या ? इस पर भी त्रागर एक नहीं पाच हो, एक पर्शनल श्रासिस्टेट का, एक पर्स-नल सेके टरी का, एक श्राम, एक दफ्तर का श्रीर एक खास खिफिया, जिसका नम्बर इने-गिने व्यक्तियों को ही मालूम हो, तो फिर बात ही क्या ? पहले जमाने मे पंचहजारी सरदार होते थे, उसी तरह मैं श्राज पंच टेलि-फोनी मन्त्री हूं। किन्तु इन पाचों में से एक का भी नम्बर मुक्ते निश्चित

रूप से याद नहीं, क्योंकि मैं समभ्तता हू कि ऐसी छोटी-छोटी बातों को याद में रखना मेरे पद की प्रतिष्ठा के लिए ठीक नहीं।

बात यह है कि उनमें से ही एक टेलिफोन पर ऊपर बताये हुए शब्दो को मैने सुना। इसके पहले रेडियो पर जुनागढ के बारे मे कोई महत्व का वक्तव्य होने वाला है, ऐसी खबर मिली थी। जुनागढ एक ऐसा सवाल था जिसके बारे मे जनता श्रीर सरकार दोनो मे बहुत चर्चा होती थी श्रीर रज भी । कुछ दिन पहले मैं पूना गया था ऋौर वहा की सार्वजनिक सभा मे कह चुका था कि 'जुनागढ' जुना-गढ होने वाला है, यानी पुराना श्रीर इतिहासलुप्त हो जाने वाला है। जूनागढ़ मे जो कुछ होता था वह मुभे मालूम था। वहा की वास्तविक स्थिति क्या थी इससे मै परिचित था श्रीर किस तरह से वहाँ की घटनास्रो मे परिवर्तन करना या करवाना था यह भी मुफ्ते मालूम था। किन्तु प्रसव हमेशा मुलभ ही होता है, ऐसा नहीं। किसी में देर लगती है, किसी में बात बहुत जल्दी हो जाती है और किसी में शस्त्रिक्रया करना ही उचित हो जाता है। उपर्यु क शब्दो को सुनने के बाद 'नहीं' कहना बड़ा मुश्किल था ऋौर जो न्यक्ति उन शब्दों को कह रहा था वह त्रसामान्य त्रीर परिचित था। मैने कहा "हा।" "क्या लगता है तुमको ?" मुफ्तसे पूछा गया। मैने कहा— "जो कुछ हुत्रा है वह बिल-कुल ठीक है।" टेलिफोन बन्द हो गया।

रात के दस बज चुके थे | हिन्दुस्तान सरकार की नौकरी बारह घटे से ज्यादा करके मैंने स्त्राराम का हक प्राप्त कर लिया था | मै गद्दी पर लेट गया, किन्तु जो सवाल-जवाब हुए थे उनको बार-बार याद करता रहा | सोचता रहा—"किस बारे में यह सवाल था ?" मिन्त्रमण्डल के सामने बहुत से स्त्रानिर्णित प्रश्न थे, वे एक के बाद एक मन के सामने स्त्राने लगे । अन्त में यही निश्चय किया कि जब स्त्रावाज में संतोष है स्त्रीर जब सरदार

खुशी में मालूम होते हैं तो जरूर ही यह सवाल जूनागढ के बारे में होगा। जूनागढ के बारे में सरदार साहब के साथ सब से ज्यादा में रहा यह बात सब जानते थे। "जूनागढ की समस्या हल हो गई, यही इसका मतलब है", इस विचार से मेरा मन प्रमुदित हुआ और उसी समाधान के वाता-वरण में सब मुख और दुःख को खतम करने वाली निद्रा ने मुमें अपने श्रद्ध में ले लिया।

दसरे दिन मन्त्रिमएडल के कमरे में सरदार साहब मुक्ते मिले। मैंने उनको वधाई दी, क्योंकि उस समय तक जूनागढ के वारे में सब बारे खल चुकी थी । सब दुनिया उनको जान चुकी थी । जिस वक्त इस सवाल को हल करने की कोशिश हो रही थी उस समय कई लोग नाराज थे, कईयो के दिल सशय से भरे हुए थे, कईयो के हाथ कापते थे। जूनागढ ने नये राजकाल मे बहुत ेचीदा हालत पैदा कर दी थी। वैसे तो सवाल बहुत छोटा था, किन्तु समभ लीजिए कि वह थी तो लघुमूर्ति किन्तु बृहतकीर्ति हो चुकी थी । जुनागढ़ कुटिल षड्यत्र का क्त्र बना हुन्ना था । वह नीति का प्रयोग-तंत्र हो रहा था। बात यह थी कि जुनागढ मे जो विजय कमाता उसके लिए ग्रन्य होत्रों में भी विजय निश्चित थी श्रौर वहां श्रपयश श्राने के माने थे हाथी के कान में चीटी का जाना श्रीर उसकी मृत्य होनी। काम तो नाजुक था किन्तु निश्चित कदम उठाये बिना काम चलने वाला नही था। जुनागढ का सवाल इतना बडा, इतना महत्व का था कि मैं नहीं समभ्तता कि उसका पूरा मूल्याकण स्त्रभी हो सकता है। वर्षों के बाद जब वर्तमान काल का इतिहास लिखा जायेगा और सब बातें, जो ज्याज कोई लिख नहीं सकता और कह भी नहीं सकता, जब मालूम हो जार्येगी तव जो कुछ सरदार साहव ने किया वह ठीक प्रमाण से मालम होगा।

महान् शिल्पकार, पटेल

एक बात निश्चित है— वह यह कि जिस महान् व्यक्ति ने जूनागढ के सवाल को हल किया, वहा की घटनास्त्रों को रूप स्रोर स्राकार दिया, वह एक बड़ा शिल्पकार स्रोर एक दृढ़ निश्चयी मूर्ति है। सरदार स्रल्प शब्द स्रोर प्रचंड कृति के समन्वय है। भविष्य में क्या होगा स्रोर कैसा होगा यह तो ऐसा समिक्तिये कि वह प्रेरणा से ही जानते है। लम्बा-चौड़ा वक्तव्य देना या निवन्ध लिखना उनके स्वभाव के स्रानुकूल नही उनकी बुद्धि तर्क-प्रधान नही। गष्ट्र नत्पूर्ण निवेदन में वह रस नहीं लेते। व्यवहार को वह जानते है स्रोर उनकी बुद्धि विलक्कल व्यवहारिक है।

मित्रमंडल में जब जब जूनागढ़ के सवाल पर चर्चा हुई मैं सदा उनका विनीत साथी रहा, और इसलिए उनका श्रमिनन्दन करने का सबसे अधिक श्रधिकार मेरा था। मैंने उनको बधाई दे दी। उन्होंने अपनी श्रादत के अनुसार अपना बाया हाथ मुह के ऊपर फिराया ओर अपनी खास हिंदी में पूछा—"श्रव क्या करोंगे?" मैं जानता था कि जो जवाव वह चाहते थे वही मैं दूंगा। इसका उन्हें भी पूरा यकीन था। श्राम तौर से उनका मन किस सवाल पर किस न्ररह से चलता है यह मुक्ते उनका निकट परिचय होने से मालूम था। मैंने जवाब दिया—"अभी तो जूनागढ़ जाना चाहिए।" "हा, कुछ ऐसा ही सोच रहा हूं," सरदार साहब ने उत्तर देया।

दो घंटे के बाद मंत्रिमडल की मजलिस खतम हो गई। हमारे मित्र-मडल मे काग्रेस कार्यसमिति के चन्द सभासद है, किन्तु जैसी लम्बी-लम्बी बहस कार्यसमिति मे होती है वैसी इधर नहीं होती। इसके माने यह नहीं कि यहाँ किसी को अपना व्यासंग या विद्वत्ता बताने के लिए कोई अवसर नहीं। वास्तव में कार्यकारियों का अर्थ है जल्दी जल्दी काम करने वाली सस्था । समभ लीजिए कि त्वरा ही उसका चैतन्य है, गित ही उसका प्राण् है। ऐसा होते हुए भी हमारे मित्रमडल की सभा कभी कभी घटो तक चलती है। विषय विविध होते हैं। ग्रोर जो कुछ निर्णय होता है उसका परिणाम व्यापक ग्रोर दीर्घकालीन होने के कारण श्रिधिक समय बहस मे खर्च होता है।

सभा खतम होने पर मै घर श्राया। एक घटे बाद सरदार साहब ने फोन पर पूछा — "चलोगे न ?" दिल की बात उन्होंने कही। मन जाने को कर ही रहा था। मैने कहा—"हा।" सरदार साहब बोले—"सध्या को श्राश्रो, सब कुछ तय करेंगे।" दूसरे दिन हवाई जहाज से जूनागढ़ जाने का प्रोग्राम तय हो गया।

हवाई जहाज नवानगर के राजा सात्य का था, जिनको जामसाहब कहते है। एक दिन पहले हिम्मतिसह जी उसको ले आये थे। हिम्मतिसह जी जामसाहब के छोटे भाई थे ओर दो वर्ष के लिए धारासभा के सदस्य भी थे। सरकार की ओर से नामजद होते हुए भी वह सरकारी 'हिए' को नहीं मानते थे। १६४६ में कई बार उन्होंने काओ स के साथ राय दी थी। वह कर्नल थे और वरसो तक जापान में रहे थे। विमान की व्यवस्था बहुत सुन्दर थी और उसमें सफर करने वाले मुसाफिर भी थोड़े थे। सरदार साहब, उनकी सुपुत्री, उनके सेकेटरी, सजय याने एसोसियेटेड प्रेस का सवाददाता। मगज-प्रभात के समय हमने दिल्ली छोड़ी। आकाश निरभ्र था। हवाई जहाज वड़े वेग से चल रहा था। अन्दर हम सरदार साहब के साथ वाले करने में व्यस्त थे। इस देश के, खास करके राजनीतिक च्लेत में रहने वाले छोटे-मोटे व्यक्तियों को, सरदार साहब अच्छी तरह पहचानते थे। प्रांत-प्रांत के राजनीतिक च्लेत की हालत और वहां के विचार-प्रवाह का पूरा-पूरा परिचय सरदार साहब को है यह बात उनके साथ च्लामात्र

संभाषण करने से मालूम हो जाती है। किसी व्यक्ति का वर्णन एक ही अर्थपूर्ण विशेषण से करने में वह वड़े पट्ट है। सारगर्भ वाक्य और मार्मिक पदाविल—ये तो उनके लिए बडी मामूली बात है। समय समय पर उनके शब्द शल्यवत होते है। इस बात को हमारे समाजवादी उनका एक वडा अपराध समस्ते है। उनके भाषण में विनोद होने के कारण वह दिल को नहीं काटता।

हमारे भाषणा में बहुत सारे विषय ह्या गये, खास करके बम्बई के कार्यकर्तात्रो त्रौर पार्टियो के बारे मे चर्चा हुई। साहित्य को छोड कर सभी विपय चर्चा मे आये। राजनीतिक क्षेत्र मे जो कुछ परिवर्तन हुए थे उनकी चर्चा करते-करते रम्यता श्रीर 'ज्ञण ज्ञण नवता' प्राप्त होती थी। कुछ महीनो पहिले जामसाहब के वक्तव्यों को हिद-स्वातन्त्र्य का विरोधी माना जाता था। उनकी चाल साफ-साफ हिंद के खिलाफ थी। उनमे व सरदार में श्राह-नकुलवत सम्बन्ध था। इस बात को तो मै श्रान्छी तरह जानता था । मैंने जान बूफकर कर्नल साहब से पूछा- 'क्यो, पहले जाम-नगर जात्रोगे ?" "हा, जामसाहब की इच्छा है, कि पहले सरदार का स्वागत वहीं करें।" मैने सरदार साहब की तरफ देखा, वह समक गये। उन्होंने कहा-"अब सब बदल गया।" श्रीर वास्तव मे बहुत कुछ परिवर्तित हो चुका था। कुछ परिवर्तित हो रहा था ऋौर जो कुछ, बचा-खुचा था वह भी निश्चय ही परिवर्तित होने वाला था । भडोल से जितना नहीं हो सकता था उतना १५ श्रगस्त को गयसीना मे जो कुछ घटना हुई उससे भारतीय शासन के द्वेत्र में हो चुका था। सुस्थित विचार-प्रासाद गिर गये थे। राजनीतिक संसार की भूमि हिल उठी थी। अतीत अपना अवशेप केवल स्मृतियों को बता रहा था। श्रौर भविष्य कर्तृत्व को खीचने की गडवड़ी मे न्यस्त मालूम होता था । विद्यमान किचित स्तब्ध, किंचित सभ्रमित किन्तु त्राशायुक्त दृष्टि से स्मृतियों को पीछे छोड़कर भविष्य को प्रयत्न रूपी बाजुत्रों में लेने के लिए त्राहुरता के साथ कदम-कदम उठाता था। त्रानेक बुद्धिमान व्यक्तियों के होते हुए भी परिस्थित करवट बदल चुकी थी, इसका पूरा मूल्याकण न हुत्रा। कितने ही सज्जन तर्क को पकड़ते हुए जो हुत्रा उसे त्रशक्य बतलाने की कोशिश कर रहे थे। इतिहास के सिद्धात भौतिक शास्त्र के सिद्धात के समान निरपेद्ध है, ऐसा समम्म कर जो कुछ हुत्रा वह सिद्धात के विस्मात हो गया इसलिए वह हुत्रा ही नहीं इस तरह के विचार रखते थे। जैसे कि हमारे ज्योतिष जानने वाले कहते हैं कि चाहे कुछ भी हुत्रा हो लेकिन प्रह ऐसा नहीं बतलाते, इसलिए वह हुत्रा ही नहीं, उसी तरह यह भी था। राजनीतिक होत्र में जो त्रपने को बड़े त्रान्भवी त्रीर विज्ञ समम्मते थे वे त्रात्म-निरीद्धण करने लगे त्रीर सोचने लगे— 'त्राखिर हम विज्ञ है या नहीं ?'' कुछ भी हो, त्राम जनता तो श्रद्धा के प्रकाश में नेतात्रों द्वारा बताये गये मार्ग पर चल रही थी।

श्रचल श्रोर नित्य ऐसी कोई वस्तु राजनीति में हो ही नहीं सकती, इस बात को बहुत थोडे लोग जानते थे। ये लोग प्राप्त की उपासना करके, क्या प्राप्तव्य है श्रीर वह कैसे प्राप्त होगा इस विवेचना में थे। संचेप में दुनिया बदल गई थी। चन्द लोगों ने समय को समभा, चन्द लोगों को समय समभता था।

जामनगर में खागत

हमारी बाते अभी चल ही रही थी कि हमारा हवाई जहाज जामनगर हवाई-अडडे पर पहुचा। यहा सब मरुभूमि थी ओर ऊपर निरभ्न तथा नीला ख्राकाश था। किन्तु इन दोनों का संगम श्रीर सम्मेलन सौदर्य को ही व्यक्त करता था। ऐसी बाह्य सृष्टि से मन का काव्यमय होना अपिरहार्य था। मराठी कवि की यह पक्ति याद आ गई—"पति गेले काठियावाडासी, गिरनार ऋबूच्या पहाडासी; " जिसका मतलब है कि पति काठियावाड को चले गये, गिरनार त्रीर स्राबू के पहाड में बसते रहे। कवि तो स्राब् स्रीर शिरनार दो पर्वतो को एक पंक्ति मे लाया है, किन्तु इन दोनो गे श्रन्तर बहुत है। कविता का वास्तविक ऋर्थ यह है कि मराठा वीरो ने काठिया-वाड को जीत कर गिरनार तक मोर्चा लगाया था, ऋपनी वीर पत्नियों को देश में छोड़कर वे विदेश में विजय कमाते-कमाते गिरनार तक पहुंच गये थे त्रौर वहा उन्होंने त्रपनी विजय-पताका फहराई थी। इस पक्ति को मै मन ही मन गाता रहा। इसके शृङ्कार, वीर रस, लज्जत श्रीर समाविष्ट भावना को मन मे सोचता-सोचता मैं तद्रूप हो गया। ये सब भावनाएं श्रव समभ्त लीजिए पार्थिव रूप लेने लगी। मेरी नजर के सामने वाययान के बदले पचकल्यागी अबलख घोड़ा खडा है, ऐसा मालूम होने लगा। खादी पहने हुए सरदार को मैने बख्तर पहन सिर पर लोहे का टोप लिये श्रौर हाथ मे हथियार लिये हुए सेनापित के रूप मे देखा सर्वत्र हथियार बन्द सिपाही नजर श्राये । दिन्नण बाह श्रीर दिन्नण श्रॉख स्पदन करने लगे। कुछ शुभ होने वाला है, ऐसी सूचना दैने लगे। अब मै हरहर महादेव की घोषणा करके आगे बढ़ने वाला ही था कि इतने में कर्नल साइव मेरे पास त्राये त्रौर बोले - "जामनगर त्रा गया"। मै स्वप्न जगत से वास्तविक ससार मे त्राया। इतने में हमारा हवाई जहाज जमीन पर उतरा श्रीर उसकी श्रावाज होने से हमारा स्वप्न समाप्त हो गया। हवाई ग्रडडे पर फीज खडी थी। सलामी देने के बाद जामसाहव की गाडी में हम बैठे ऋौर उनके प्रासाद में गये। जलपान हुआ श्रीर उसके बाद हम मोटर मे शहर की तरफ चले। मानो सब शहर रास्तो पर खडा है, इतनी भीड़ थी। जगह-जगह द्वार बने थे। ''हिन्द विजयी हो", ऐसे-ऐसे फलक स्वर्णाद्वारों में लिखे हुए जगह-जगह नजर त्र्याते थे। यह जामसाहब की नगरी नवबधू समान मालूम होती थी। चक्रावित तिर्ग निशानो की मालाएं नववधू का भाल-प्रदेश सुशोभित करती थी । जनता त्योहार की पोशाक पहने श्रौत्मुक्य के साथ भीड को बढ़ाती थी। इस समय स्त्रियों की सहज सुलभ शालीनता मालूम नहीं कहा लुप्त हो गई थी। स्त्रीवर्ग बहुत प्रगल्भता के साथ आगो जाने की कोशिश करता था, एसा मालूम होता था। सब जगह पहली कतार उन्ही की थी। सख्या में भी वह ऋधिक मालूम होती थी। उच्च, श्यामल किन्तु श्राकर्षक सिर पर जलकलश लिये हजारो नारिया मार्ग मे नजर श्राती थी। वहा राजपुरुष का स्वागत करने की ही प्रथा है। हम श्राहिस्ते-श्राहिस्ते जा रहे थे। जामसाहब हमारे सारथी थे। सर्वत्र मालाश्रो श्रीर फूलो की वर्पा होती थी। कई मील तक माटर चलती रही। दोनो तरफ जनता-सागर उत्साह से प्रफुल्लित हो रहा था, नारे सुने जाते थे। दो घंटो के बाद हम प्रासाद मे वापस आये। अगर काठियावाड मे सरदार साहब हस्तच्चेप करेंगे तो उनके लिए खतरा है, ऐसी चेतावनी देने वाले जाम-साहव त्राज हवाई ऋड्डे पर सरदार साहब के स्वागत मे स्त्राये, उनको बडा भाई कहकर त्र्यालिगन किया, उनका सारथ्य भी किया। दिल्ली-पति के समान उनका प्रवन्ध रखा। इन सब बातो को मै सोचता रहा। इस सब का क्या मतलब है ? सरदार आज सत्ताधीश है। सब गुरा काचन का त्राश्रय करते है त्रौर सब जनता सत्ता को प्रणाम करती है, यही सत्य है।

राजकोट में अपूर्व उत्साह

भोजन के बाद हम हवाई ब्राड्डे पर ब्राये और कोई एक घटे में राजकोट पहुचे | हवाई ब्राड्डे पर भराठा पलटन ने स्वागत किया | बाद में हम रेसिडेन्सी गये |

ब्राध घंटे में हम सभा स्थान पर पहुंचे। वहा प्रचंड जनसमुदाय उपस्थित था। इसी शहर मे १६३६ के मार्च मास मे महात्माजी ते त्र्यनशन किया था। वह बात त्र्याज याद त्र्याई। वह राजा त्र्यव स्मृति मात्र रह गया था और उस प्रधान का जो राजा से भी ऋधिक उन्मत्त था. श्राज इस दुनिया में नामोनिशान भी नहीं था। वह श्रानियत्रित सत्ता बरबाद हो चुकी थी । स्त्राज के जलसे मे महत्त्व का ऐलान होनेवाला है. ऐसा मालूम होता था। ऋौर जनता भी बहुत उत्सुक थी। जनता की स्वातन्त्र्य-लालसा पहले से ज्यादा तीब्र थी। जनता उत्तरदायी सरकार को पुरुपार्थ मानती है। राजकोट के ठाकुर सभापति थे श्रीर सभा मे काठिया-वाड का दुश्मन ग्रीर विग्लवी ग्राज बोलने वाला था। जनता का तो वह पहले से मित्र था ख्रीर राजा लोग उसकी मैनी सम्पादन करने मे व्यस्त हो गये थे। ठाकुर साहब ने सभापति की हैसियत से सरदार साहब का स्वागत किया श्रीर उत्तरदायी सरकार बहाल करने की वोपणा की। तालिया गूंज उठी। बिजली की रोशनी में ऐसा मालूम होता था कि विकसित कमलो का यह बगीचा है. क्योंकि जनता प्रमुदित हो गई थी श्रीर श्रानन्द लोगों के मुख पर नाच रहा था। सरदार साहव ने श्रपना भाषरा गुजराती में दिया । उन्होंने केन्द्रीय सरकार की नीति का विवररा दिया; जो हिद मे स्रा गये थे, उनको बधाई दी स्रोर जो विरोधी थे स्रोर मखालफत करते थे उनको चन्द सारगर्भित शब्दो मे समभाया। जो श्रनिश्चित थे उनके भविष्य का उन्होंने श्राच्छी तरह कथन किया। ज्यो-ज्यो सरदार साहब बातें करते जाते थे त्यो-त्यो जनता उत्तेजित श्रीर उल्लिसत होती थी। उनका वक्तत्व स्वर मे शीतल किन्त ऋर्थ मे तेजस्वी था। परिगाम यह हुआ कि सागर के समान जनता के अन्दर शांति श्रीर बडवानल जो दोनो बाते था उनपर साथ-साथ प्रभाव होता रहा। इस हश्य को देखकर एसोसियेटेड प्रेस के सवाददाता सरदार का भाषण न समभते हुए भी तालिया बजाते थे। ऋर्थ के पहले ऋावाज से वे समरस हो गये थे। ऋौर जब मैने उनको ऋंग्रेजी मे उस भाषण का ऋनुवाद बताया तो उनको यह व्यम्रता हुई कि कब मै ये सब बाते सारी दुनियां को बताऊँगा।

रात को हम रेसिडेन्सी मे रहे, वह प्रासाद-तुल्य रेसिडेन्सी जिसमें गवर्नर श्रीर वाइसराय को ही मेहमानी दी जाती थी। श्राज उसमें सामान्य जन श्रीर उनके नेता रह गये थे। मैं समभ्तता हू इस बात को भी यह परिवर्तन श्राच्छा मालूम होता था। जैसे जीवन मे वैसे ही पार्थिव सृष्टि में भी विविधता श्रीर वैचिज्य श्रानन्द को जन्म देता है। वैसे तो वैचिज्य ही जीवन का सार है।

तारीख़ १२ नवम्बर १६४७ की रात हमने राजकोट की रेसिडेन्सी मे गुजारी । यह रात संवत्सर की ऋाखिरी रात थी । ऋमावस तिथि थी और ऋानेवाला दिन नृतन सवत्सर का पहला दिन था, वर्षारम का दिन । यह बात सच थी कि एक जमाना खतम हो चुका था और दूसरा शुरू हो रहा था । सुप्रभात काल मे स्नान करके हम लोग हवाई ऋड्डे पर ऋा पहुचे ऋौर चन्द मिन्टो के ऋन्दर जूनागढ़ पहुंचने वाले थे। हमारा वायुयान ग्राकाश मार्ग को काट रहा था। गिरनार पर्वत के शिखर नजर ऋाने लगे। कर्नल कहने लगे—''इस पर्वत राजी मे सिह रहते है।" मैने कहा—''दिल्ली मे भी सिह हैं।" उन्होंने शका और ऋाश्चर्य के साथ मेरी तरफ देखा। आगे मैने कहा—''उनमे से कुछ इसी वायुयान मे है।" और मैं सरदार साहब की तरफ देखने लगा। खुद की तरफ देखने का मोह मैने महान तपस्वी के सयम-समान रोका। कर्नल हसे ऋौर उन्होंने कहा—''हां, टीक है।" किसीने कहा—''सिह का शिकार तो गायब हो गया।"

मैंने कहा—"कुछ स्रवसर तक, किन्तु पलायन से ! खैर मैदान तो स्रामी साफ हो गया।"

गिरनार पवत को बाई स्रांर छोड हमारा हवाई जहाज जूनागढ शहर के ऊपर से किसोदे हवाई अड्डे पर उतरा। यह अड्डा जूनागढ़ से लगभग तीस मील है। हवाई-ऋड्डे की हालत कुछ रण्तेत्र सरीखी मालूम होती थी। वहा दो-चार नागरिक नजर त्राये, शेप सब सैनिक थे। सब तरफ जीप खडी थी। सैनिक जन मराटा पलटन के थे। कुछ त्राफसर भी मराठा थ । सरदार साहब श्रोर मै एक जीप मे बैठे श्रागे श्रीर पीछे जीप चलती थीं । उनमें सैनिक थे और उनके हाथों में स्टेनगन थीं । किसी भी काम के लिए वे तैयार मालूम होते थे। उनके शरीर मे ज्ञानन्द व्याप्त था। कारण यह था कि दो ही दिन पहले जूनागढ़ की हुकूमत ने शरणा-गति मंज्र वरके ऋधिकार भारत-सरकार को बहाल किया था। इस सिलासिले मे इन सैनिको ने बडी खूबी के साथ काम किया था। सैकडो अरब और पठान जूनागढ में सशस्त्र थे और वे गडबड करेंगे ऐसा माना जाता था । पुलिस श्रीर फीजी श्रफ्सर हुकूमत द्वारा मानी गई हार मानेगे या नहीं, इसका पता नहीं था। इसलिए शहर का कब्जा लेने के वक्त कैसी भी हालत हो उसका मुकाबला करने के लिए सब तैयारियां करके भारतीय-श्रफसरो ने प्रवन्ध किया था। यही कारण था कि हमारे सैनिक विजय के ज्ञानन्द में थे, लेकिन वे बेहोश नहीं थे। अनुशासित थे, किन्तु उद्धत नहीं थे। स्रागे-पीछे भौज स्रोर बीच मे हमारी जीप इस तरह से हम चल रहे थे । स्टेशन को जाने वाला रास्ता खास तौर पर बनाया गया मालूम होता था। दोनो बाजू फासले-फासले पर सशस्त्र श्रीर संसच्जित सैनिक खंडे थे। स्टेशन के प्लेटफार्म पर थोडी संख्या में किसान श्रीर श्रफसर नजर श्राते थे। शरीर मे पैजामा श्रीर एक खास किस्म का कुरता, सिर पर काठियावाडी फेटा, बदन से ज्यादा श्रीर ऊँचा, मुख पर किचित कठोरता-- इस तरह का स्वरूप वहां खड़े हुए किसानो का मालूम होता था। जहा हम जीप से उतरे वहा से रेलवे के सैलून तक सैनिको की दो कतारे खड़ी थी। बीच में से जब हम चले तो फूलो की वर्षा हुई स्रोर 'हिन्द्स्तान जिन्दाबाद' के नारे सहस्र-सहस्र कठो से उछलते रहे। इस वडी भारी भीड मे मेरा मन सोचने लगा- "अगर कोई दुष्ट-बुद्धि मुसलमान हो तो क्या ?" फौरन मै सरदार साहब के पास-पास चलने लगा श्रीर ज्यादा सतर्क होकर इधर-उधर देखने लगा। हम सैलून मे बैठे। इतने मे कुछ अन्तर पर 'जय सोमनाथ' की आवाज मैने सुनी। उस श्रोर देखा। एक ऊँचा, वृद्ध किन्तु तेज: पुज, भाल के ऊपर तिलक लगाय, मुद्रा गम्भीर, किन्तु कृत-कृत्य का सतीष जिसके चेहरे से टपकता था. एसा सज्जन खडा था। एक बार फिर उसने वही गर्जना की श्रीर वन्दन किया | मेरी इच्छा उसकी श्रोर देर तक देखने की थी । इतने में गाडी चल दी। डेट घटे तक रेलवे का यह प्रवास जारी रहा। प्रदेश बड़ा श्रन्छा मालूम होता था । बीच-बीच मे वृत्त श्रोर बगीचे भी नजर श्राते थे। करीव दस बजे हमारी गाडी जूनागढ़ स्टेशन पर पहुची। मैं सोचता था श्रीर चिन्तित भी था कि देखें क्या दृश्य नजर श्रायेगा । सरदार साहब त्र्याज तो विजेता के नाते से जा रहे थे। पराजित कैसा वर्ताव करेंगे, उनके विचार क्या होगे, उनकी भावना क्या रहेगी, इन्हीं बातो पर मै विचार कर रहा था। मन में विचारों भी भीड थी, वाहर लोगों की। स्टेशन पर, ऐसा समभ्त लीजिए, शृगार श्रपना महोत्सव मनाता था। दीर्घकाल के वाद मिलन होने के वक्त जिस किस्म का वातावरण होता है वैसा ही यहा था। विरह की रात खत्म हो चुकी थी। हिंदू जनता आज अन्तः करण से कतशता त्यार गति में निर्भयता दिखलाती थी। बरसो तक श्रपमानित हुत्या स्वाभिमान गर्दन को उन्नत करके नवप्राप्त सम्मान को शान के साथ ऋनु-भव कर रहा था। सब लिटफार्म सचेतन हो गया है, ऐसा मालम होता था। हरेक व्यक्ति के हाथ में फल की माला थी। हरेक व्यक्ति सरदार साहव को हार पहनाने के लिए त्रातुर था। डिब्बे से उतर कर पुष्पहारो को लेते-लेते हम वेटिंग रुम मे पहुंचे। वहा जूनागढ के लुप्ताधिकार नौकर श्रौर हुकुमत चलाने वाले खडे थे। नवाब साहव ने तो ''मै हाथ मे शस्त्र नहीं लूगा" मानो ऐसी प्रतिज्ञा करके जूनागढ को 'त्राले-कुम' करके खुद को 'पाकगत' किया था। जाते वक्त उन्होंने अपने साथ सपत्ति त्र्योर कुत्ता यही पाथेय लिया। स्थावर को छोडकर यही जगम चीज उन्होंने पसन्द की । शायद उसीको उन्होंने श्रेष्ठ माना होगा। बात यह थी कि जहा उन्होंने फूल का संचय किया था वहा ब्राज वह कड़े उठाने के लिए तैयार नहीं थे। वह काम उन्होंने श्रपने वफादार 'दोस्त-इ-दौलत' नौकरो के ऊपर सौप दिया था। उस कतार मे खडे हुए श्रीह्देदारी मे न्यायाधीश थे, सेनापित थे, श्रष्टप्रधान थे। इनमे एक अग्रेज और सब मुसलमान थे। अग्रेज ओहदैदार बिल-कुल 'सुख दु:खे समेकृत्वा' जैसे रूप मे था। जैसे काला-टोपी गुनहगार श्रक्तित मन से मजिस्ट्रेट के सामने खड़ा होता है उसी तरह वह खडा था श्रीर मुंह पर कृत्रिम हास्य लाके नैसर्गिक दुःख को छिपाने की कोशिश करता था। जनता को त्रस्त करने वाला यह ऋधिकारी वर्ग मिर्गि-विहीन सर्प के समान निस्तेज मालूम होता था। उनके सामने से हम जा रहे थे। हरेक का हमसे परिचय कराया जाता था । एक सस्मरणीय ख्रौर ऐतिहासिक घटना हो रही थी। फ्रांस ऋोर जर्मनी की श्रारणागित के समय याद श्राये । बचपन मे राजा पौरस ने श्रपनी तलवार सिकन्दर के सामने रखी थी, ऐसा मैने इतिहास मे पढा थाँ श्रीर वह बात याद श्रागई। बड़े मुह से 'हिद के साथ लड़े गे' ऐसे नारे लगाने वाले ये श्रौहदेदार श्रभी उत्तर के श्रनुयायी वन गये यह देखकर विश्वास श्रागया कि कभी न कभी इतिहास भी इसाफ करता है। हम श्रागे चले तो श्रारजी हुकूमत के प्रमुख सामलदास गाधी श्रौर उनके साथी खड़े थे। उनके साथ हमारा परिचय कराया गया। कुछ ही सप्ताह पहले श्रलपारम्म करके ज्नागढ़ रियासत को श्रपने सगठन में लानेवाले सामलदासजी बड़े प्रतिष्ठा-रांपन्न सज्जन है। बड़े धैर्य श्रौर चातुर्य के साथ उन्होंने कदम उठाया। समय को सममा। कर्तव्यभूमि को बचाया श्रोर बिलकुल ठीक मुहूर्त पर प्रहार करके विजय पाई। यह बात ठीक है कि देश मे जो हो रहा था उसकी वजह से उनको विजय प्राप्त हुई। लेकिन साथ-साथ यह भी ठीक नहीं होगा कि हम उनके कर्तृत्व को कम समभो या कम माने। जूनागढ़ की पुरानी हुकूमत श्रौर जूनागढ की श्रारजी हुकूमत इन दोनो के प्रमुख व्यक्तियों के साथ जब हमारा परिचय कराया जाता था तो मानो ऐसा र दूर ोल के का हम दो प्रथक्-प्रथक् जमाने से जा रहे है। ऐसा लगता था जैसे एक का विनाश श्रौर दूसरे का उदय हो रहा है।

मोटर में बैठकर हम शहर की तरफ चले। पुराना शहर दीवालों के अन्दर है। नई बस्ती, दफ्तर. कालेज आदि संस्थाएं किले के बाहर है। रास्ते में सब जगह सैनिक नजर आते थे। एक बड़ी कोठी में, जो राजप्र.साद के समान मालूम होती थी, हमारी गाडी गई। वहा तोपें, टैंक और हाथ में बन्दूक लिए हुए जवान भरे हुए थे। वह सेनापित की छावनी थी। वहा हमारा हैडक्वार्टर के अपसरों के साथ परिचय करवाया गया। उन अपसरों में कई महाराष्ट्रीय भी थे। चाय पीने के बाद हम सभा-स्थान पर गये। वहा भी पूरा फीजी बन्दोबस्त था। चारों ओर राइफल लिये सैनिक खड़े थ। सभास्थान को फीज ने घेर लिया था। किन्दु जनता खुश

मालूम होती थी। यह बन्धन नहीं था, सरच्चण था। जनता और सेना के मनो में मिलन हो गया था। सैनिकों को जनता देखती थी, लेकिन उसके मन में डर के बदले अभिमान था। आत्मीय वातावरण की वजह से मुख और आनन्द उस सभास्थान में कीडा करते थे। जब सरदार वहां आये, प्रचड जयघोष हुआ। जनता तो उनके नजदीक आने के लिए आउर थी ही, चैनिकजन और भी आउर थे। कुछ मिनटों के अन्दर कतार के साथ सभास्थान को घेरे हुए सैनिक जनतासागर में विलीन हो गये। खादी और खाकी एक जगह आने की वजह से विविधता में कुछ मौलिक एकता भी मालूम होने लगी।

स्वागत के बाद सरदार साहब ने अपना भाषण शुरू किया। उन्होंने मुसलमानों को पूर्ण नागरिकत्त्व और संरच्चण का आश्वासन दिया। फिर जूनागढ़ हिंदुस्तान में आना चाहता है या नहीं, यह सवाल किया। फीरन हिंदुस्तान जिदाबाद के नारे लगे। हजारों हाथ ऊपर हो गये। एक च्चण के अन्दर जनमत आजमाया गया। भूमि पर बैठे हुए लोग अपने सहस्रावधी हाथों को ऊपर करते थे। ऊपर से सहस्र-रिश्म यह दृश्य देख रहा था। भूमिस्थित हरेक व्यक्ति मानो अपना शरीर पूर्णक्षिण बाहुक्प क्यों नहीं हुआ ऐसा मानता था और बार-बार हाथ ऊपर करता था। अनियित्रत सत्ता के पदतलों से दिलत हुए, जबरदस्ती से पीडित हुए, जीवन और वित्त के सतत विवेचना में गिरे हुए ये जीव सकट से मुक्त हुए मानो मन का आनन्द और प्राफुल्य अपने कर-कमलों से दिग्दर्शित कर रहे थे। फोटोआफर को शायद ही कभी इतना मनोहारी और ऐतिहासिक दृश्य मिला होगा। ऊपर उठाये हुए हाथ मानो पुराने जमाने की पुरानी हुकूमत को स्वर्ग का मार्ग बता रहे थे।

जब सामलदास जी खडे हुए तो फिर से जयनाद हुआ। "अव मेरा

कार्य हो चुका, मै हिन्दुस्थान सरकार का एक त्राज्ञाकारी नागरिक हूं त्रौर रहूगा; मैंने जो कुछ किया वह जनता के लिए, उसमे न किसी जाति का सवाल था, न किसी धर्म का।" सामलदास जी के ये शब्द सुनकर प्रेस्तको ने, जिनमे कई मुसलमान थे, तालिया बजाईं।

सभा खतम होने के बाद हम स्टेशन त्र्राये। वहा पता लगा कि हम सोमनाथ या प्रभातपट्टण को जा रहे है।

१३ नवम्बर १६४७ ! यह तो नवसंवत्सर का पहला दिन था । सुबह से दिच्चण भुजा फडक रही थी। मन में कुछ व्याकुलता थी। कुछ-न कुछ श्रच्छा होने वाला है, ऐसा मन को माल्म होता था, किन्तु बात स्पष्ट नही थी। विचारों के दृष्टिदोत्र में कुछ स्रिमनव नजर नहीं स्राता था। जो कुछ त्राबतक हो चुका था वह कोई बडी त्राने वाली घटना की सुन्दर पार्श्वभूमि है, ऐसा ही विचार मन मे स्त्राया । ऐसा प्रतीत हुस्त्रा मानो कोई सुन्दर ध्वनि हम सुन रहे है। लेकिन त्र्यानेवाला संगीत कौनसा है, यह नहीं जान सकते थे। सैलन में सेनापित ने प्रोग्राम बताया। उसमे सोमनाथ मन्दिर को देखना भी था। वहा मुक्ते पता चला कि सोमनाथ मदिर, प्रभातपद्दर्ण जूनागढ के चेत्र मे है। इस बात का पता चलते ही विचार-चक्र शुरू होगया। गाडी बेरावल पहुची। वहां हम गाडी से उतर गये श्रीर फीरन मोटर मे बैठकर प्रभातपट्टल को खाना हो गये। यहा से प्रभातपङ्ग ६ मील था। प्रवास मे हम बिल्कुल भूमिपुत्र हो गये, यानी र्घूाल से भर गये। रास्ते के दोनो बाजू कब्रिस्तान नजर त्र्याते थे। उनमे जगह-जगह लोग खंडे हमारा स्वागत करते थे जिससे जीवन श्रीर मृत्य का नित्य साहचर्य प्रस्थापित होता था । थोडी ही देर मे हम किले की गिरी हुए दीवाल के पास आये ओर वहा से हमने 'त्रिवेगी' मे प्रवेश किया। जिस भूमिभाग पर त्राबादी है उसे त्रिवेगी कहते है। कुछ मकान ठीक थे, किन्तु स्रिमिकतर गिरे हुए थे। इन दोनों को देखते-देखते हम सोमनाथ मदिर के सामने स्रागये। रमशान, गिरा हुस्रा किला, गिरे हुए मकान मानो यह नष्ट सृष्टि हमारी स्राखों के लिए पूरी नहीं थी, इसलिए हमारी दृष्टि के सामने यह भग्न मदिर स्रागया। स्रन्तःकरण में तृफान-सा उठा। दिल बेचैन होने लगा। हमारे इर्द गिर्द सैकडों लोग थे। ये सब हिन्दू जिन्दा थे स्रीर हमारे सामने उनका भग्न मंदिर खडा था। यह दृश्य शल्य से भी ज्यादा दुःख देनेवाला मालूम हुस्रा। बीच में मंदिर स्रीर चारो तरफ खाली जगह थी। तीन तरफ से चहारदीवारी थी, जो बहुत कुछ गिरी हुई थी। पश्चिम में लगभग बीस फुट के फासले पर स्ररब सागर स्रमर्थाद विस्तार से मानो पहरा दे रहा था। एक छोटा फाटक था, उसमें से हमने स्नन्दर प्रवेश किया। सामने मंदिर का प्रवेश द्वारा था, किन्तु वहां न द्वार था न चौखट।

ऊपर देखा तो शिखर भी नजर नहीं त्राता था। याद त्राई कि इतिहास में लिखा है इस मिदर के चंदनी दरवाजे महमूद ग़ज़नी काबुल लें गया था। हृदय में हजारो भावनाए उठने लगी। इसी जगह हजार वर्ष पहले इस्लाम के अनुयाइयों ने इस मिदर की बेइज्जती की थी। इन अविधों ने बारह ज्योतिलिगों में से एक इस 'पश्चिम' सागराधीश भगवान को मही में मिला दिया था। जान से भी धर्म प्यारा मानने वाले हिंदू जान को ज्यादा मान कर उस समय भाग गये थे। जिसके लिए जिन्दा रहना व जिसके लिए मरना कर्चन्य समभा जाता था उस धर्म को मानने वाले उस वक्त कहा थे? सोमनाथ के सेवादारों ने देवालय की मूर्ति के संरच्या के लिए मृत्यु का मोल देने के बजाय द्रव्य के साथ सौदा करना चाहा। 'मै मूर्ति बेचने वाला नहीं, मै मूर्ति का मंजन करने वाला हू'—इसी वृत्ति से प्रेरित होता हुआ महमद एक महान व्यक्ति था इसमें कोई

शका नहीं । कौन जानता है, कितनी बार वह इस महान् देश से सपित श्रीर सतिया श्रपने देश ले गया ? मन मे सताप, उद्धेग, नफरत, नानाविध भावनाच्यो का मानो एक सम्मेलन और संघर्ष होता था। क्या सर्वशक्ति-मान प्रभु एक सामान्य मानव के सामने हतबल हो गया। ऋपने ततीय नेत्र से जग का सहार करने वाला श्री शकर अपनी तीनो आंखें बन्द करके संहार देख रहा था ^१ नहीं, नहीं ये देवता नहीं हो सकते। ये देव नहीं, जब इनमें दैवस्व ऋौर कर्तृत्व ऐसे मानने वाले लोग न हो । श्राखिर परमेश्वर तो मनुष्य रूप से ही काम करता है ? उसकी शक्ति का ऋाविष्कार करने वाला माध्यम कच्चा या कायर हो तो उसमे दोष शक्ति का कैसा ! भूठे धर्म से चलने वाली जनता मृत्यु-भय का त्याग ध्येय के लिए, श्रादश के लिए, कर नहीं सकती। श्रद्धा गुंजाइश को बर्दाश्त नहीं करती। श्रद्धा या ो जीती रहेगी या मरेगी। श्रद्धा श्रीर समभौते मे समन्वय नही। एक चाल से ये दोनो नहीं चल सकते । मूर्ति को तोड़ना अगर धर्म है, अगर श्रद्धा है तो उसे बेचना धर्म-विरोधी काफिर का काम है। उसे बेचने का ऋर्थ ऋश्रद्धा प्रकट करना है। श्रद्धा के लिए मानव न मरे तो उसकी या तो श्रद्धा कम है या मानवता।

मैं मन्दिर को देख रहा था। वह सौदर्यपूर्ण कलाकृति का नम्ना त्राज बिलकुल बेडौल मालूम होता था। रेखबध श्रौर प्रमाण्वध रचना त्राज हताहत हुई प्रतीत होती थी। दुःखी श्रन्तःकरण से हमने श्रन्दर प्रवेश किया। पहले भाग में श्रभी-श्रभी कुछ सफाई की गई है, ऐसा मालूम होता था। श्रागे जाकर सोमनाथ की मूर्ति नजर श्रायगी, इस विचार से मै श्रागे बढा तो जो कुछ दृश्य देखा उससे मन श्रौर शरीर बिलकुल निश्पाण हो गया। ऊपर देखा तो शिखर नहीं था, एक बड़ा छोद था जिससे ऊपर का नीला श्रासमान नजर श्राता था। वही त्रेत्र था। जिस जगह मूर्ति होनी चाहिए उस जगह एक बडा खड्डा था। वहा मूर्ति नहीं थी। इसी स्थान पर खड़े होकर उन श्रविव्य ने धर्म-कार्य समम्भकर मूर्ति को फोड-तोडकर उसका भजन किया था, यह इतिहास है। कहा जाता है कि कुछ लोग मूर्ति को बचाने के लिए उसके ऊपर गिरे। किन्तु उनको भी खतम कर दिया गया। जैसे प्राण्-हीन शरीर होता है श्रीर रसहीन काव्य होता है बैसा ही वह मूर्तिविहीन मिंदर मालूम होता था। मेरी भावनाश्रो को सम्पूर्णतया वर्णन करने मे भापा श्रसमर्थ है। कहा गई थी वह वैदिक सस्कृति, कहा था वह पूर्वजो का पराक्रम, क्या हुश्रा था उस 'कृरवन्तो विश्वार्यम' की घोषणा को ? हमारी मत्सर वृत्ति, भाई-भाई का वैर, धर्म श्रीर देश से व्यक्तिगत स्वार्थ श्रीर प्रतिष्ठा को ज्यादा मानने वाली हमारी वृत्ति—इन्होंने इतिहासकाल मे हमे वरबाद किया श्रीर वही काम श्रमी भी हो रहा है। सुभे श्रपने से नफरत हो श्राई।

समय पर छोड देने वाला या घोका देने वाला धैर्य, धैर्य नहीं। निरचय ही कुछ-न-कुछ हमारे धर्म मे, या हमारी सस्कृति मे, या हमारी मनोरचना मे दोष है। वैयक्तिक मत का श्रिममान श्रीर श्रह्कार समाजकार्य के लिए हम कब छोडेंगे ? सामुदायिक हित श्रीर प्रतिष्ठा मे हम कब रस लेंगे ? कब हम जुडाई का मर्म समभेंगे ? कब हम विवेक को जोडेंगे ? कीन जाने, कौन यह करने वाला है ? ऐसे विषएण विचार मन को काटते थे। इतने मे सामने की दीवाल के ऊपर बड़े श्रच्यों मे लिखा हुश्रा 'महाराष्ट्र' शब्द मैने देखा। उस शब्द मे क्या जादू है यह वही जानता है जिसकी मातृमापा मराठी है। लोहा से पारस का स्पर्श होने से वह जैसे सुवर्ण हो जाता है उसी तरह यह शब्द नयनों से मन मे जाते ही विषएण विचारों का रूपान्तर प्रेरणा मे हो गया। श्रनन्त मावना इस शब्द मे समाविष्ट है। श्रच्छा श्रीर बुरा, पराक्रम का श्रीर परामव का श्राटूट स्वार्थत्याग

का श्रीर वाछनीय लोभ का, जीवित की तमा न मनाने वाला श्रीर जान के लिए लाचार होने वाला ऐसा विविध इतिहास इस शब्द मे समाया हम्रा है। हिदवी स्वराज्य का फाडा अयदक के किनारे लगाने वाले परा-कमी पुरुखो का मै वशाज इस भग्न मन्दिर को, इस मूर्तिहीन देवालय को कैसे देखूं, इस दृश्य को कैसे बर्दाश्त करूं ? शरीर रोमांचित हो गया। प्रेरणा रम्य कल्पना को जन्म देती रही । कुछ मंगल हो रहा है, ऐसी कुछ सख की भावना मन को उल्लंसित करने लगी। मैने सरदार की तरफ देखा श्रौर मै बोला—''यह मैं वर्दाश्त नहीं कर सकता।'' कुछ श्रौर बातें मेरे मन मे आ रही थी। मैं समक्ता कि मेरे मन मे जो हो रहा है उसका कुछ अन्दाजा सरदार को लगा। मन के विचार अधिकतर स्पष्ट होने लगे। कल्पना रूप लेने लगी । हम मन्दिर के बाहर आरये और पश्चिम की ओर सागर के पास हम गये । सागर मे ज्वार आ रहा था । उसे यह तो मालूम नहीं हो गया था कि मेरे मन में क्या है। जो रम्य कल्पना मेरे मन में जन्म पा चुकी थी उसका स्वागत करने के लिए तो वह नहीं स्त्रा रहा था ? जिन वीर पुरुषों ने इस देश को सिंदयों के बाद स्वातन्त्र्य श्रीर एकता दी उनके कृतज्ञतापूर्ण पाद-प्रचालन के लिए तो वह नहीं स्त्रा रहा था ? इस प्रचंड देश में बहुविध घटनाये हुई, भाग्योदय हुन्ना, नाश हुन्ना। लोग चढ़े श्रीर गिरे। इन सब दातों को दैखने वाला यह गवाह ऐसा माल्म होता था कुछ बात दैखने क लिए उत्सुक है। सागर के तीर के ऊपर मैंने श्रपनी कल्पना सरदार के सामने रखी। सनते ही वह त्रानंदित हो गये। उन्होने मेरे कधे पर हाथ रखा स्त्रौर कहा—' करो।"

फौरन मै और सरदार पानी के पास आये, हमने पाद-प्रचालन किया और चन्द मिनट बाद हम मन्दिर के पास आये। अभी मन्दिर मेरे पीछे था। मैं, सरदार और जामसाहब प्रवेश-द्वार की देहली पर खड़े हो गये। लोगों को बुलाया गया। दाहिने वाजू सागर च्राण-च्राण उल्लिसित हो रहा था। हमारे सामने और बाई ओर जनसागर भी उत्सुक और उल्लिसित हो रहा था। पार्श्वभूमि में भगन वस्तु निस्तब्ध थी। मैंने घोषणा की कि हिद सरकार ने इस देवालय का जीगोंद्वार करने का निर्णय किया है। हमारी पाई हुई सत्ता नाश के लिए नहीं निर्माण के लिए है। यही हमारा जीवन कार्य है। तालियों का प्रचंड नाद हुआ और एकाएक रफूर्ति के साथ लोगों ने "जय सोमनाथ" की हुकार लगाई।

एक निमिष्र के अन्दर सब वायुमडल बदल गया । हा. एक इजार वर्षों के बाद इस स्थान पर इस घडी मे यह घोषणा हो रही थी। एक हुजार वर्षों के बाद इतिहास ऋपना ऋगा चुका रहा था। जामसाहब ने एक लाख रूपया प्रदान करने की घोपणा की । वहा से जनसमह 'जय सोमनाथ, जय सोमनाथ' नारे लगाता हुन्ना देवी ऋहिल्यादेवी द्वारा बनाये हुए सोमनाथ मंदिर की तरफ चला । वहा सभा का प्रोग्राम रखा गया था। उसी सभा मे सरदार साहब ने भी ऐलान किया - "त्राज नृतन संवत्सर का पहला दिन है। त्राज के शुभ त्रवसर पर शिवालय का जीर्गोद्धार करने का निर्णय हिन्दुस्थान सरकार ने घोषित किया है।" फिर से 'जय सोमनाथ' के नारे सुने गये ऋोर लोगों ने इस बारे में दान देने के ऐलान किये। सारा प्रभातपट्टन मानो ऋाज जाग्रत हो गया। यह इतिहासकालीन युद्ध-घोषणा हजार वर्षों के बाद प्रभातपद्दन की त्रप्राबादी में सनाई गई। समा-समाप्ति के बाद हम वापस चले। मेरे मन मे यह विचारधारा बहने लगी कि त्रागे कैसे काम करे। रास्ते में किले के पास सरदार साहब बोले-"इसको दुरुस्त करो । इस श्मशान, इस कब्रिस्तान की जगह बग़ीचा बनास्रो।" मतलब यह था कि नष्ट-युग समाप्त हुस्रा था श्रीर निर्माण-युग शुरू हुश्रा था।

सोमनाथ के जीर्गोद्धार का निर्णय बेतार के तार द्वारा चन्द मिनटो के श्चन्दर भारत देश में फैल गया । वेरावल स्टेशन के ऊपर सेवादार श्राये । उन्होने हमे श्राशीर्वाद दिया। गाडी चली। हम किसोदे स्टेशन श्राये श्रीर वहां से हवाई-ग्रड़े पर गये। ग्राध घंटे के ग्रन्दर हम जामनगर के हवाई-ग्रड़े पर पहुचे । वहा तो जबरदस्त भीड़ जमा थी । रानी साहिबा ने हमे बधाई दी। दरबार गोपालदास बोले-''ग्रभी सभी पता लगा है कि सरदार के साथ त्राप क्यो त्राये ! जीवन में यह कुछ नया त्रानुभव नहीं था। जो किया था वह स्फ्रिति के साथ, उसके बारे में कुछ दीर्घ विचार या पूर्व स्चना नही थी। किन्तु स्फूर्ति ने जो कुछ किया उसके लिये संकल्प का सद्गुण मुभापर लगाया गया, ऐसा ऋनुभव बहुत बार मुभे हुन्ना है। चाय लेने के बाद हम फिर विमान में बैठे। तेजी के साथ दिल्ली की ऋोर हमारा विमान जा रहा था। स्राते वक्त क्या विचार थे स्रीर जाते वक्त क्या। मुक्ते ऐसा लगता था जैसे मेरे नयनो के सामने हज़ारो हिन्दू वीर 'जय सोमनाथ, जय सोमनाथ' कर रहे हैं। सर्वत्र स्त्रानन्द स्त्रीर मगल नजर त्र्याता था । वास्तविक कार्य में कुछ बिलम्ब था, किन्तु कल्पना का बीज बोया जा चका था। एक हजार वधों के बाद इतिहास ग्रपनी चाल बदल रहा था। यह एक बिलकुल क्रांतिकारी बात थी श्रीर देश ने भी वैसा ही माना । किसी ने कहा-- 'हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान हो रहा है।" किसी ने वहा-"पुरानी कला का उद्धार हो रहा है।" किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ । किन्तु एक बात में सब की राय एक थी, ऋौर वह बात थी 'जय सोमनाथ' की घोषणा ।

⁴⁴ग्यानू मरा नहीं, बचा बन गया है''

पजबन्दी जेल से छूटकर श्राते हैं, उनका यह एक कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उन कैंदियों के सगे सम्बन्धियों से मिले, जिनके साथ उन्होंने जेल में दिन बिताये हैं। महीनों तक ग्राथवा बरसों तक जो लोग इकहें रहते हैं, उनके स्तेह-सम्बन्धों का एक-दूसरे के जीवनों पर प्रभाव पढे बिना नहीं रहता। यदि यह सहनिवास बाहर न होकर जेल में हुन्रा हो तो उसका प्रभाव जीवन पर ऋौर भी ऋधिक पड़ता है ऋाज सुक्ते यह नहीं बताना है कि दीर्घ-कालिक कारावास ता व्यक्ति के जीवन पर क्या प्रभाव होता है, प्रत्युत जब कैदी यह बताता है कि इकड़े एक साथ नहीं छुटते, कभी कोई छूटता है कभी कोई, तो उस अवस्था मे उनकी मानसिक अवस्था क्या होती है। पच्चीस गत वर्षों में दस बारह बार मै जेल हो श्राया हू। तीन पातो की कुल जमा सात जेलों में रहने का श्रवसर मुक्ते

मिला है। जितनी बार जेल गया उतनी ही बार जेल से छूटा भी। जीवन श्रीर मरण जैसे एक इन्द्र है, उसी प्रकार केंद्र श्रीर रिहाई भी एक इन्द्र है। जिस प्रकार यह एक श्रटल नियम है कि जो पैदा हुश्रा है वह श्रवश्य मरेगा उसी प्रकार यह भी श्रटल ही है कि जो गिरफ्तार हुश्रा है वह रिहा होगा। पर इसवा यह मतलव नहीं कि इस नियम का श्रर्थ-ज्ञान राजबन्दी को पहले ही किसी दिन हो चुका होता है। हा एक बात पक्की है। रिहाई के दिन उसकी मानसिक श्रवस्था श्रानिश्चित-सी रहती है। वह खुशी भले ही महसूस कर रहा हो फिर भी उसके चित्त मे एक प्रकार का विभ्रम-सा रहता है। श्रपने श्रनेक केंदी साथियों को पीछे छोड़कर जब वह रिहा होने लगता है, उस समय उसकी मनोदशा बहुत कुछ दयनीय रहती है। उस श्रवस्था में वह श्रनेक राजबन्दियों के संदेश लिया करता है, तािक उन्हें वह उनके प्रियजनों तक पहुचा सके।

मैं जब जेल से छूटा तो उस समय अपने साथ जेल में रहनेवाले अनेक तरुण कार्यकर्ताओं के सदेशों का, जिन्हें उनके प्रिय परिजनों तक पहुँचाना था, बोम्ता लिए हुए बाहर आया। प्रच्छन्न अथवा अपन्छन्न अनेक रीतियों से कैदियों ना अपने प्रियजनों से पत्र-व्यवहार तो चलता ही रहता है, तो भी जेल से रिहा होकर आए हुये व्यक्ति के मुख से अपने बेटे, भाई तथा पत्नी की खबरे सुनकर सम्बन्धियों को ऐसा ही आनन्द अनुभव होता है, जैसा उनको प्रत्यन्त मुलाकात में हुआ करता है। कालिदास की यह उक्ति 'कान्तोदन्तः . . . सगमात किंचित् न्यूनः' पूर्णित्या सार्थक है। प्रियजनों के समाचारों का महत्व उतना ही होता है, जितना उनके सान्चात्कार का होता है। सो इस प्रकार के सदेश-बाहन के अनेक भार अपने कंघों पर लिए मैं वाहर निकला था; पर बाहर आने पर मुक्ते इस मेघदूती काम के स्थान पर कुछ और ही काम करना पड़ा।

श्रपने प्रांत के इस छोर से लेकर उस छोर तक जाना मेरे लिए श्रावश्यक हो गया था। असफल एव अन्यमनस्क जनता मे उत्साह-सचार के लिए गाधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम की ध्वनि जहा-तहा सुनाई दे रही थी। जनता को त्रानाथ त्रीर त्रासहाय त्रावस्था मे समभकर जुद्र त्राधिकारियो द्वारा स्थान-स्थान पर किए जाने वाले ऋत्याचारों का ऋार्त्तस्वर भी निरंतर सुनाई देता जा रहा था। इसी प्रकार के कार्य के सम्बन्ध मे मै सतारा जिले के प्रशात रमणीय कृष्णा तीरवतां प्रदेश मे परिभ्रमण कर रहा था। कल्हाड के पवित्र नगर तथा पुर्यक्तित्र में कोयना नदी के प्रीति सगम के कारण उल्लिसत श्रीर प्रोत्साहित हुई कृष्णा नदी उस गाव के समीप से होकर बह रही थी। जब मै गाव मे प्रविष्ट हुन्ना उस समय रात के दस बजे होगे । श्राकाश मे चन्द्रमा का प्रकाश फैला हुआ था । नदी ी तीर-वर्ती भाडियो पर, नदी की धारा पर, नदी की रेती पर इस चन्द्र प्रकाश के जो विविध खरूप प्रतिफालित हो रहे थे, उन्हें देखकर चित्त ग्राहलाद का अनुभव कर रहा था। मेरे मन मे प्रश्न उठा, क्या इस चादनी मे यथेच्छ विहार करने वाले इस ग्राम के निवासियों के चित्त में भी इसी प्रकार का ख्राह् लाद होगा ? अपने साथ के कार्यकर्ता से मैने इस गांव की सारी घटनात्रों का इतिवृत्त पूछना त्रारम्भ किया।

जनता का उत्साह

मेरा यह पथ प्रदर्शक एक सोलह सत्रह वर्ष की उम्र का कार्यकर्ता था। उसने मार्क्स के ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया था, उसे काग्रेस के इतिहास की जानकारी नहीं थी, विश्व से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर आजकल किस प्रकार का विचार-प्रवाह चल रहा है यह उसे मालूम नहीं था। आन्दोलन के आरम्भ काल में सब कहीं जो एक त्फान-सा आ गया था, उसमें पाठशाला के जीवन से वह बाहर फेक दिया गया था। यद्यपि इस

पथ-प्रदर्शक की पढ़ाई-लिखाई केवल चार पांच कच्नात्रों तक ही हुई थी त्रीर यद्यपि वह उम्र में भी छोटा ही था, तो भी उसे देखकर हठात् बहिजीं (शिवाजी के एक दूत) का स्मरण हो त्राता था। गत दो वर्षों में वह कहां-कहा घूमा फिरा, क्या-क्या काम वह करता रहा, इत्यादि उपन्यास जैसे रहस्य भरे चृत्तात वह सुनाता जा रहा था, जिन्हे सुनकर मेरे शारीर के रोगटे खड़े हो त्राते थे। मैंने कहा,—राघू तेरी बात तो हो गई, त्र्यव त्रपने गांव की बाते सुना न! ' उसने कहा— "जब हमारा मोर्चाठन रहा था, उस समय गोलियों से इस गांव के सात व्यक्ति मारे गये, त्रानेक वायल हो गये, पचास-साठ त्रादिमयों को सजाएं हुई', त्रीर दो सौ से क्यादा व्यक्तियों को 'डेटिन्यू' बनाकर सरकार इस गांव से पकड़ कर ले गई। सिर्फ दो दिन पहले ही की बात है, पुलिस वाले इस गांव के फरार हुये त्रादिमयों को पकड़ने के लिए त्राये थे। बात यह है कि सरकार पूरी तरह से इस गांव के पीछे पड़ी हुई है।"

''इस गाव में कितने घर हैं ?" मैने पूछा।

"बडे ख्रौर छोटे सब मिलाकर सौ के करीब घर है।" उसने उत्तर दिया। मेरे मन में विचारों का एक मन्त्र-सा नलने रुगा। इतने से गाव में इतने लोगों को सज़ा हुई, इतनों को पकड लिया गया, इतनी बार पुलिस का छापा पडता है, तब भी जिन का धैर्य विगलित नहीं होता ऐसे प्राम-बन्धुख्रों का दशन करने का अवसर मुभे प्राप्त हो रहा है, सचमुच यह तो बड़ा ख्राहों भाग्य है।

हम गांव मे प्रविष्ट हुए। अनेक ग्रामवासी मेरी राह देख रहे थे। उनमें चौदह से लेकर अठारह वर्ष की उम्र के लोगों की ही अधिक भरमार थी। उनके साथ मैं अपने ठहरने की जगह पर आया। ग्राम के बहुत-से-छोटे-बंडे लोग मुफ्त से मिलने के लिए आए तथा उन्होंने आठ अगस्त के बाद को उस गाव की उल्लेखनीय घटनायें कह सुनाई । नेता के न रहते हुए पथ प्रदर्शक के न रहते हुए इन लोगों ने जो कुछ काम सहज स्फूर्ति के वश होकर किया वह जहां पूर्ण ब्राहिसात्मक था वहां वह उदात्त भी था। इसी उदात्त वृत्ति तथा भावनात्रों का ब्राविष्कार रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा इन गावों ब्रौर इस प्रदेश में दृष्टिगत हो रहा था। गाव वालों के ब्रापस के बड़े-बड़े भगड़े गाववाले ही पचायतों की मार्फत तय कर लिया करते थे। कार्यकर्ताक्रों के सगठन के कारण सरकारी ब्राधिकारियों पर जैसा एक प्रकार का ब्रातिक-सा बैठ गया था, वैसा ही ब्रातिक गाव के गुएडों, डाबुन्ब्रों ब्रोर खुटेरों ब्रादि पर भी बैठ गया था। गाव की सफाई भी बहुत बद गई था। ब्रामवासी कार्यकर्त्तागण बड़े ब्राममानपूर्वक कहा करते थे कि ब्रामराज्य का कार्य हम पूरा करके रहेगे। उनके सगठन कार्य की प्रतिक्रिया स्वरूप ही इस भाग में पुलिस वालों की इतनी दोड-धूप मची हुई थी। मेरे मन में ब्रावास ही मवाल पैदा हुब्रा, ये लोग ब्रपने उद्योग में कहा तक खरे उतरेंगे।

गर्न मुकेगी, पर

कृष्णा एवं गोदावरी के मध्यवतीं दोस्रावे का यह प्रदेश वही था जहा श्रीरंगजेब ने लगातार बीस बरस तक सिर पटका परन्तु वह इसे जीत न सका । महाराष्ट्र की राजधानी को कर्नाटक से जिजी नामक स्थान पर ले जाकर बीस बरस तक स्वातन्त्र्य-रच्चा के लिए श्रयखड रूप से लडनेवाले हटी मरहटों के ये वशज मला कष्टो श्रीर यातनाश्रों के मुकाबलें में कभी हार मान सकते हैं १ श्रीरगजेब का श्रमुभव था कि 'जहां शत्रु रहते हैं, वहा उनका राज्य रहता है ।' यही श्रमुभव स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के लिए मृत्यु की कीमत चुकानेवाले, स्वदेश के लिए फकीरी को स्वीकार करने वाले लोगों का भी है। जुलम श्रीर जबर्दस्ती के कारण गर्दन सुक भी जाय तो भी उनके सम्मान-श्रिभमान में कभी भुकाव नहीं श्रायेगा। हथकिंदयों से हाथ जकड़े जा सकते है, पर श्राशावाद को कौन जकड सकता है ! नागरिक स्वातन्त्र्य की त्र्यवस्था यह है कि उसे जितना ही कुचलने की कोशिश करो उतना ही उसके प्रति विद्यमान् श्रावर्षण की तीव्रता बढ़ जाती है। खुले आम चौराहो पर चलनेवाले आन्दोलन जुल्म जबर्दस्ती के कारण तहखानो तथा श्रारण्यवनो मे पहुँच जाते है । 'भासमान' व्यक्ति 'भूमिगत' हो जाते है। वह व्यक्ति जिसकी चर्चा हर एक की जीभ पर रहती है, ख्रज्ञात हो जाता है। सर्वत्र संचरण करने वाला व्यक्ति फरार समभा जाता है। वृद्ध बोलने लग जाते है। मनुष्यो का मौन श्रिधिक सार्थक हो जाता है। एक चीटी जिस प्रकार दूसरी चीटी से मिलती है श्रौर किसी प्रकार का प्रस्ताव अथवा प्रस्तावना न करते हुए, चुपचाप चीनी कहा है यह बताती जाती है, उसी प्रकार यह स्वातन्त्र्य की 'सीटी' अरायवनों मे 'सुनने वालों' को ही सुनाई देती है, सदेश देती है। सदेश पहुँचाने का काम जड श्रीर चेतन दोनो ही करने लगते है । एतद्विषयक जो बाते अनेक राष्ट्रों के इतिहास में हमने पढ़ी थी, वे ही आज साचात रूप से इन ऋाखों के सामने से गुजर रही थी ऋौर मन मे यह विश्वास भी हद होता जाता था कि इतिहास का नियम कभी त्र्यसत्य सिद्ध नहीं होगा।

इसी बीच मेरे पथ-प्रदर्शक ने मुक्ते स्राज्ञा दी—''श्रव रामजी बुवा के पास जाना चाहिए।''

मैने पूछा— "कौन-से रामजी बुवा ?"

उसने बताया कि रामजी | खुवा उसके गाव के एक बढई है। दो बरस पहले उनका इकलौता लडका 'ग्यान्' मोर्चे मे गोली का शिकार बनकर मर गया था, श्रतः उनसे मुभको श्रवश्य मिलना चाहिये। मैने उसकी यह प्रार्थना तत्काल मजूर की श्रौर पाच-दस मिनटो मे ही हम उनके एक बड़े से मकान में पहुँच गये। जेल से छूटकर बाहर स्राते समय जिस प्रकार के सदेशवाहन का भार मुफ पर था यह वस्तु स्रोर यह प्रसग उससे भिन्न था। वृद्धावस्था में स्रापने इकलौते पुत्र से हाथ धो बैठे हुए एक ब्यक्ति से मुफ्ते मिलना था। मैं विचार करने लगा कि उससे क्या कहा जाय १ किस भापा में, किन शब्दों में उसकां ढाढस बधाया जाय इसका निश्चय ही नहीं हो पा रहा था। जिसने स्रापने योवनकाल में स्रानेक व्यक्तियों के घर खड़े किये होंगे, उसी का घर स्राज दैव ने ढहा दिया था। यह विश्वकर्मा (बढई को विश्वकर्मा कहते हैं) स्राज पूर्णत्या परास्त हो चुका था। जिस प्रकार बस्ले से छीली-तराशी गई ऊबड़खाबड लकड़ी को उमेदी गई यातना के परिमार्जन के लिए बारीक रंद से चिकना बनाकर सान्वना दी जाती है, उसी प्रकार देव ने भी उस बढ़ई के बारे में किया था, स्रर्थात् गोली-काड में लड़के की मृत्यु हो जाने के पश्चात् एक-दो महीने में ही उसका पोता पैदा हो गया था।

ग्यानू बचा बन गया है

बरामदे मे एक कमली बिछाकर उस पर वह वृद्ध सज्जन बैठे हुए थे। पास मे दो-तीन त्रारे सज्जन बैठे हुए थे। मैने जाते ही उन्हें ग्रामि-वादन किया त्रारे मेरे मना करने पर भी उस वृद्ध ने मेरे पैरो पर श्रपना सिर एस दिया। क्या बोलें, यह स्फता ही नहीं था। सारा वक्तृत्व पन्ना-धात-पीडित व्यक्ति के श्रगों की माति निष्क्रिय हो गया था। प्रतिमा कुं। उत हो गई थी। संकटकाल मे जिस प्रकार मित्र साथ छोड़ देते हैं उसी प्रकार शब्द मी जिह्वा का साथ छोड़ गये। जैसे तेसे प्रयत्न करते हुए मैंने कहा—''ग्यानू बड़ा खुशनसीब था, इस प्रकार की मृत्यु तो मागने से भी नहीं मिलती।' मेरा वाक्य श्रभी समाप्त भी नहीं हो पाया था कि पास ही मे बैठे हुए दो बरस के श्रपने पोते को श्रौर नजदीक

लेते हुए वह बृद्ध बोला — "नहीं, नहीं, ग्यानू मरा नहीं। ग्यानू बच्चा बन गया है।" श्रीर ऐसा कहकर उसने उस छोटे-से श्रमंक को मेरे पैरो पर रख दिया। मैं श्रीर भी विश्रम में पड़ गया। "ग्यानू मरा नहीं, ग्यानू बच्चा बन गया है।" इसका सम्पूर्ण श्रथ जब मेरे ध्यान में श्राया तब मुक्ते श्रत्यन्त कृतार्थता श्रनुभव हुई। जो श्रात्मज्ञान प्रवचन से उपलब्ध नहीं होता, केवल बहुश्रुत होने से उपलब्ध नहीं होता, वह इस बृद्ध को कहा से प्राप्त हो गया र ग्यानू मरा नहीं, वह श्रमर है यह तत्त्वज्ञान इस निरच्चर ने कैसे जान लिया र श्रात्मा का श्रमस्त्व मानवीय जीवन-धारा की श्रवंडता में है यह इसने कैसे पहचाना र श्रात्मा वै पुत्र नामासि' इस वेदांतगत रहस्य का इसे कैसे पता चला र दुःखप्रद घटनाश्रों का उत्साहवर्डक श्रर्थ निकालकर उत्कृष्ट स्वरूप की मनःशाति कर लेने की कला इसे कैसे हस्तगत हुई र भ्यानू बच्चा बन गया है' इस वाक्य द्वारा श्राशावादिता का एवं प्रयत्नों की श्रमरता का एतादृश नितात सुन्दर रीति से प्रदर्शन किस साहित्यिक ने उसे सिखाया र

पौरस्त्य संस्कृति की मूर्ति

स्वातन्त्र्य की प्राप्ति के लिए किया गया प्रयत्न—किंवा किसी भी श्रेष्ठ आदश को प्राप्त करने के लिए किया गया प्रयत्न—अनाथ अवस्था मे नहीं मरता, नहीं नष्ट होता, यही उसके कहने का अभिप्राय था न १ एक ज्योति से दूसरी ज्योति के प्रज्ज्वलित हो जाने पर दोनों के प्रकाश मे अन्तर कैसे रहेगा १ इसके विपरीत 'अधिक प्रज्ज्वलन का परिणाम अधिक प्रकाश होता है, यही उसका अर्थ है । नई पीढी का अभिप्राय है प्रयत्नों के लिए अधिक काल, अधिक दोत्र तथा अधिक आशा। जिसके लिए मृत्यु एक ज्ञुद्र-सी वस्तु है, एक ज्ञुद्र-सी घटना है, जिसने मृत्यु को एक अनित्य अनुभृति मानकर नित्य एवं निरन्तर रहने वाली अनुभृति को जीवन माना

है, जिसने जीवन का ग्रर्थ माना है ग्राशा, वही सच्चा समदर्शी नही क्या ? स्थितप्रज्ञ की क्या परिभापा है, स्थितप्रज्ञ क्या खाता है, कैसे रहता है. कैसे बोलता है इसका नित्य विवेचन हमारे मे से अनेक लोग अहर्निश किया करते है। परन्तु वैसा (स्थितप्रज्ञ) व्यक्ति मुभ्ते त्र्राज साज्ञात दिखाई दिया त्रोर मै तो कहता हूँ, जिस समाज मे इस प्रकार का एक भी व्यक्ति मौजूद है वह समाज धन्य है, उसका भविष्य उज्ज्वल है। उपनिषदों की सच्ची संस्कृति मेरे समद्ध संदेह रूप में उपस्थित थी। पौरस्त्य सस्कृति का यह एक मूर्तिमान दृश्य था। यह तथा ऐसे ग्रमन्त विचार मेरे भन मे उठ रहे थे। इसी बीच मेरे उस तरुए कार्यकर्ता ने सभा का समय हो जाने की स्चना देते हुए मुक्ते उस दिव्य न्चप्नावस्था से जगाया। रामजी बुवा के पैरो पर श्रक्तरशः श्रपना मस्तक रखकर मैं वहा से बाहर निकला। मेरे मस्तिष्क मे "ग्यानू मरा नही, वह बच्चा बन गया है" यह वाक्य लगातार चकर काट रहा था श्रीर श्राज जब मै यह लिख रहा हूँ मेरी पुनः यही ऋवस्था हो रही है ऋौर वैसा ही त्र्यानन्द त्रानुभव हो रहा है जैसा कि उसके प्रथम बार अवरा करते समय हुआ था। ऋपने उस ऋानन्द का एक ऋंश भी यदि मै ऋपने पाठको तक पहुँचा सका तो मै समभूंगा कि बड़ी भारी कमाई मैने कर ली।

डिकसाल का चूल में ?

सेकरड क्लास का टिकट है और न इटर का ।' टिकट बाबू के इन शब्दों को सुनते ही मेरे मुँह से अनायास निकल गया— "बेचारे लोग निगश हो जांयगे।" टिकट बाबू ने यह सुन लिया। क्या हुआ कौन जाने, उसने मुफ्ते फिर खिडकी के समीप बुलाया और कहा, "माफ़ कीजिए, इटर का एकाध, टिकट होगा, ऐसा प्रतीत होता है। पांच-छ; मिनट में मैं आपको बताऊगा।" मैं पूना स्टेशन पर सेकंड क्लास के टिकटघर की खिड़की के सामने, कधे पर नई फैशन की फोली डाले, परीचाफल की बाट जोहनेवाले विद्यार्थी की भाति खड़ा रहा।

श्रक्तुज में एक नई पद्धति की शादी होने जा रही थी, मुभे उसका 'श्रप्यच्च' बनने के लिए जाना था। रात की मेल ही सबसे श्रिषक सुविधा वाली गाडी थी। मेल में डिकसाल का टिकट नहीं मिल सकता था श्रतः सौ मील श्रागे के कुई वाडी नामक जंकशन का टिकट लेने की कोशिश करना जरूरी होगया। समाज में विद्यमान विषमता की भांति यात्रा का यह श्रेणी-विभाजन एवं विषमता तो सम्प्रति श्रोर भी श्रिषक श्रसहा हो उठी है।

टिकट बावू की कहानी

जेल से छूटे हुए अनेक कार्यकर्ता आमसुधार कार्य की इच्छा से गावों में जाकर बस गये हैं। अनेक स्थानों पर उन्होंने नई पद्धित की शादिया रचाना भी शुरू कर दिया हैं। एसी ही एक शादी का पुरोहितपन एक भी मंत्र और विधि न जाननेवाले वेदोनारायण के पल्ले आ पड़ा था, और इसी कार्य के लिए टिकट लेने की यह उछल-कूद हो रही थी। उन पाच मिनटों में न जाने कितने प्रकार के विचार मस्तिष्क में होकर गुजर गये। उसी समय शोलापुर के कुछ लोग टिकट की आशा से वहाँ आ पहुंचे और उन्होंने मुक्ते नाम लेकर पुकारा। नामोच्चारण से स्वभावतः टिकट बाबू पर कुछ प्रभाव पड़ा और उसने मुक्ते तत्काल अपने पास बुलाया तथा इटर का टिकट पकड़ा दिया।

उसकी इस भद्रता के लिये मुक्ते थोडी कीमत भी चुकानी पड़ी। दस मिनट तक वह अपनी नौकरी का सारा कच्चा चिट्ठा सुनाता रहा। २३ वर्ष तक वह अपनेक ए० टी० एस० और डी० टी० एस० (जिसका अर्थ मुक्ते बिलकुल नही मालूम) के साथ किस प्रकार लड़ा, यह उसने बताया। उसका भाई एम० ए० होकर भी बेकार है, और उसने नॉन-मैट्रिक होते हुए भी पूना के एक उपनगर मे दगला बनवाया है। उसके लड़को ने सन् १४२ के आदोलन में किस प्रकार उसकी बात नही मानी। उसकी कहानी में ये बाते सम्मिलित थी। मुक्ते भय लगने लगा कि अब वह अपना महाभारत पूरा किये बिना चैन न लेगा। मै इससे अपना पिड छुड़ाने का उपाय सोचने लगा। इतने में रणागण पर जानेवाले सैनिको की हलचल शुरू हुई और उसका फ़ायदा उठाकर मै वहा से खिसक गया। टिकट मिल जाय और वह भी एक भी पैसा अधिक सर्च किये बिना, तो इस आनन्द को पुत्रजन्मोत्सव के आनन्द के समान ही समक्ता चाहिए।

त्राखिरी गाड़ी भी त्रागई

गाडी के ह्याने में ह्यभी डेढ घर है की देर थी। टिकटघर के समीप दिखाई देने वाली सारी ह्याकृतिया प्लेटफार्म पर दीखने लगी। जादूगर की टोपी में से जिस प्रकार चीज बाहर निकल ह्याती है, उसी प्रकार बाकी न रहने पर भी ह्यनेक व्यक्तियों को टिकट मिल गये, यह दैखकर थोड़ा ह्यानन्द हुद्या ह्योर थोडी चिन्ता भी हुई। ह्याखिर ये सारे लोग डिब्बे में भीड मचाये बिना न रहेंगे।

डेद घटे इन्तजार करने के पश्चात् त्र्यान्वर गाडी भी त्र्या ही पहुँची। कुली ने मुफ्त से कहा, 'श्राप डिब्बे के भीतर चले जाइये मै श्रापका बक्स श्रापको पकडा द्गा ।' ज्योही गाडी थमी, उत्तरने वालो श्रीर चढ्ने वालों के बीच दनद शुरू हो गया। जो काम तरीके से किया जाने पर दो मिनटों मे खत्म हो गया होता, वह दस मिनट मे भी नहीं हो पाया। रावरा के दरवार मे अगद ने जिस प्रकार गवाचा के द्वार से प्रवेश किया था, मैं भी उसी प्रकार डिब्बे मे प्रविष्ट होकर बैठे हुए यात्रियो की जाघो पर धम्म से गिर पड़ा । मेरे इस पराक्रम से आस-पास के चार-पाच आदिमियो को तकलीफ़ तो ज़रूर ही हुई होगी। यह भी सम्भव था कि वे मुफ पर टूट पड़ते, किन्तु डिब्बे की सारी ही खिडकियाँ प्रवेश-द्वार वन गई थी. श्रीर फिर यह श्राजकल रोज़मर्रा की बात हो गई है, श्रतः किसी ने उसे बहुत ज्यादा बुरा महसूस नहीं किया । सोडावाटर के बक्से में जिस तरह सोडावाटर की बोतल ठू सकर भरदी जाती है, उसी प्रकार ३६ स्रादमियो के उस छोटे से डिब्बे मे ७० से भी ज्यादा श्रादमी हो गये थे। जो श्रान्दर श्रा गये थे वे त्रान्दर वालों से एका करके नये श्राने वालों के साथ लड़-भगड रहे थे। गाडी के हिलते ही तीर की तरह एक तरुरा ब्यापारी ने डिब्बे मे प्रवेश किया। उसके साथ लड़ा जाय या उसकी दत्त्ता की

तारीफ़ की जाय, इसका ऋभी फैसला भी नहीं हो पाया था कि गाड़ी का बेग बढ़ गया और ऋन्दर की जनगगा शात हो गई।

डिब्बे में युद्ध

तथापि इस च्रा भर के प्रशात वातावरण के पीछे एक उथल-पुथल भी छिपी हुई थी। बर्थों पर कुछ व्यक्ति सीये पड़े थे। वैंचो के मध्य में तथा दरवाजे के सामने सामान ऋस्तव्यस्त रूप में पड़ा हुऋ। था। इधर-उधर भी कुछ लोग ऋस्तव्यस्त ऋवस्था में पड़े सो रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा मालूम होता था कि कोई ज़ोर का भ्चाल आया है जिसके कारण सब कुछ ऋस्तव्यस्त हो गया है।

कुछ लोग टेढे-मेढे बैठे हुए थे, कुछ खड़े हुए थे। कुछ लोगों को खड़े रहने के लिए मी जगह नहीं थी। उनमें से बहुतेरे सैनिक थे। एक ने ऊपर सोये हुए एक सज्जन को हिलाकर बैठने के लिए जगह देने को कहा। उक्त सज्जन मद्रासी थे। उन्होंने उत्तर दिया, यह जगह बैठने के लिए नहीं, सोने के लिए हैं। सैनिक ने डिब्बे को युद्ध ज्ञेत्र का रूप देकर ऊपर के दुश्मन को तत्काल नीचे खोच लिया। मद्रासी यात्री ने डिब्बे में मौजूद टिकट-चैकर से चिल्लाकर कहा कि इस सिपाही ने मुम्ह पर हाथ उठाया है, मेरे साथ मारपीट की है।

'श्रापकी त्राकृति से तो ऐसा नहीं मालूम होता।' चैकर ने मुह बना कर उत्तर दिया।

डिन्ने मे नैठे हुए सार यात्री ठहाका मारकर हॅस उठे। सिपाही ने उस सरकारी क्लर्क को धता बताकर ऋगिखर ऋपने लिए जगह बना ही ली।

मैं श्रभी तक व्यास महर्षि के समान दोनो हाथ ऊपर किये खड़ा ही था। मेरी बात कोई सुनेगा, ऐसी उम्मीद भी नहीं थी। तथापि सुभे उस स्थिति में देखने वाले स्रनेक थे, स्रौर प्रसिद्धि तथा नेतागिरी का जो फ्रायदा होना चाहिए सो हुस्रा।

रहा मारवाड़ी ही !

पूना में मेरे साथ कांग्रेस में काम करने वाले एक सज्जन गाड़ी में बैठे हुए थे। उनका रोजगार व्यापार था। ऋतः उनका विश्वास था कि स्वराज्य की ऋषेचा सम्पत्ति श्रेष्ठ है। डिब्बे के एक कोने में मुस्ते पहचानने वाले एक और सज्जन बैठे हुए थे। उन्होंने नाम लेकर मुस्ते पुकारा तथा ऋधिकार की हुई खूब खुली जगह मुस्ते बैठने के लिए दे दी। हम तीनों के बैठते ही युद्ध तथा ऋगन्दोलन सम्बन्धी चर्चाये छुड़ गई।

इसी बीच डिब्बे मे बैठे हुए एक मारवाड़ी सज्जन की 'रोमाच-कथा' सुनने का मौका हाथ लगा। उसके पास टिकट नहीं था, इस कारणा टिकट चैकर कुर्डू वाडी तक का दुगना किराया माग रहा था। मारवाड़ी सज्जन का कहना था कि 'हम दो भाई, एक बम्बइ को तथा दूसरा कुर्डू नवाडी को जाने के इरादे से चले। इडबड़ी मे टिकट बदल गये। मेरे पास तो बम्बई का टिकट आ गया और मेरे भाई के पास कुर्डू वाड़ी का टिकट आ गया और मेरे भाई के पास कुर्डू वाड़ी का टिकट चला गया।' टिकट उसने लिया था। बम्बई का टिकट उसके कथन की सत्यता को प्रमाणित कर रहा था। उसके पास पूरे पैसे नहीं थे। जितने थे उतने देने के लिए बह तैयार था। उसका जाना बहुत ज़रूरी था। उसे धमकी दी गई कि दौड तक के पूरे पैसे न दिये तो पुलिस के हाथ मे उसे सौप दिया जायगा। मारवाडी सज्जन ने स्थिति को पहचानते हुए कहा कि कुर्डू वाडी पहुचते ही मै पैसे दे दूगा। मैने बीच-बचाव करने का यल किया। पर न्याय और क़ानून के अन्तर का ज्ञान टिकट-चैकर की बुद्धि से परे की बात थी। और मेरे मध्यस्थ बनने का इनाम मारवाड़ी सज्जन ने कम पड़ने वाले पैसी को मुक्ती से माग कर दिया।

मैंने तत्काल वे पैसे दे दिये। उन सज्जन का नाम श्रीर पता भी मैंने नहीं पूछा। जब डिकसाल स्टेशन पर मैं उतरा, उस समय भी नहीं पूछा। मैंने सोचा, जिसको देना होगा वह तो देगा ही, जिसे नहीं देना वह नाम श्रीर पता पूछने पर भी नहीं देगा। श्रपने पास की सम्पत्ति तो एक धरोहरमात्र है। महात्मा गांधी के इस सिद्धात पर श्राचरण करने का श्रवसर मिलने के कारण मैं कदाचित् उसी के श्रानन्द में निमम्न था।

यह बताने से मुक्ते आनन्द होता है कि उक्त घटना के तीन सप्ताह बाद वह रकम मनीआर्डर द्वारा मुक्ते मिल गई। तथापि घर की कोषाध्यद्व इस घटना को सुनकर मेरे इस कृत्य को 'भोलापन' बताये बगैर न रह सकी।

म्युनिसिपैलिटी की 'सुव्यवस्था'

डिन साल स्टेशन पर एक ही दिया था और वह भी प्रकाश पहुचाने के स्थान पर चारों ओर फैले अन्धकार को ही अधिक स्पष्ट कर रहा था। प्लेटफार्म पर इन्तजाम के वास्ते भेजा हुआ स्वयंसेवक उपस्थित था। रात के ३ बज गये थे। अकल्ज की मोटर के छूटने मे अभी तीन घरटे शेष थे। स्टेशन मास्टर से पूछने पर पता चला कि दूसरे दर्जे के मुसाफिरों के टहरने के लिए कोई इन्तजाम नहीं है। तीसरे दर्जे के मुसाफिरखाने में अधेरे मे अनेक लोग सोये पडे थे।

स्टेशन मास्टर ने त्राग्रहपूर्वक निवेदन किया कि स्टेशन की बैंच पर ही मैं बची-खुची रात गुजारू पर स्वयसेवक ने बताया कि मोटर स्टेंड के समीप इन्तजाम अञ्छा है अतएव हम दोनों स्टेशन की सीमा से बाहर स्टेंड के पास आये।

चांदनी में मन की दौड़

कडाके की सर्दी थी। त्राकाश में शुक्ल पत्त का चन्द्रमा सर्दी को

श्रीर भी बढा रहा था। श्रासं-पास की फौजी लारिया हाथी के समान लग रही थी। रास्ते की बगल में जो खुली जगह थी, वही मोटर स्टैंड था। स्वयंसेवक इस भरोसे में था कि बची-खुची रात मोटर में ही श्राराम से बिताई जा सकेगी, पर हमारे साथ के श्रान्य श्रानेक भी इसी भरोसे पर मोटर की श्रोर श्रा रहे थे। ऐसी हालत में मैंने यही निश्चय किया कि मोटर में बैठने की श्रपेत्ता बाहर चांदनी में ही रात बिताई जाय। किम्बहुना, यह कहना श्रिधक उचित होगा कि, मुभे वैसा निश्चय करने के लिए विवश होना पड़ा।

कुछ ही फासले पर एक प्रख्यात पूजीपित का गेस्ट-हाउस मी या श्रीर वहा मै गया होता तो ठहरने का सुर्राच्चत इन्तजाम भी हो गया होता, पर ऐसी सुविधा के सामने श्रिभमान सुकने के लिए तैयार नहीं हुआ। फलतः बची-खुची रात श्रद्धारशः धूल में बितानी पड़ी।

मेरे सहयात्रियों ने धूल मे अपनी कमिलया बिछाना शुरू कर दिया। श्रीर मुफ्ते क्या करना चाहिए, इसका मैं श्रमी विचार ही कर रहा था। नीद बुरी तरह सता रही थी, पर धूल मे बिछौना डालने के लिए मनतैयार नहीं हो रहा था। समय-श्रसमय, स्वर-श्रस्वर मे मातृभूमि के गीत गाने वाला मै, श्राज श्रपनी मातृ-भूमि के श्रक मे लेटने के लिए तैयार न था!

में खडा-खडा सोचने लगा, मेरे पडौस मे कमली पर लेटते ही नींद— गहरी नीद — का श्रास्वादन करने वाले लोगों के मन मे भी क्या मेरे जैसे ही विचार श्राये थे ! श्रीर यदि नहीं श्राये तो क्यों नहीं श्राये ! जिनके अम पर सारा जगत पल रहा है, उनके हिस्से मे सुख का एक छोटा-सा श्रश भी न श्राये ! यात्रा की सारी सुख-सुविधाश्रों के साधन कतिपय विनिच्चित (खास) लोगों ही के लिए हैं क्या ! श्रीर इसी के साथ, इतनी तीं विषमता होते हुए भी उसकी ज्ञानानुभृति बहुजनसमाज में क्यों नहीं होती १ एक ब्रादमी मर-मरकर मेहनत करे ब्रौर द्सरा उसका ब्रानन्द लूटे, यह कहां का न्याय है १ जिस समाज-व्यवस्था में इस ब्रान्याय को स्थान है, वह क्यों बनी रहे १ मेरी ब्राखों के सामने उन खेतिहरों के स्मृति-चित्र ब्राखें हुए जो कहा करते थे, "दादा, हमारे दैव ही में कष्ट लिखा है।" सामाजिक ब्रान्याय को दैव का हवाला देकर सम्पत्ति-शाली ब्रौर संचयवादी वर्ग ने ब्रापना काम साधने का यन किया है।

इस प्रकार धूल मे बैठे हुए मेरी विचार-मालिका चालू थी, इसी समय पास के होटल से ऋावाज़ ऋाई, 'चाय किसे चाहिए ?' ऋौर मै उस स्थान पर चला गया।

इस प्रदेश में चीनी के कारखाने हैं, पर सामने आई गुड़ की ही चाय! ठीक है जहाँ चीज उगती या बनती है वहाँ विकती नहीं। इस सिद्धाँत की प्रतीति एक अन्य ही रूप में हुई। ६ बज गये थे और मोटर के चलने का समय भी हो आया था, अतः हम मोटर में जा बैठे। मोटर एजेट ने अपने रोज के नियम से अनाप-शनाप बाते बोलते हुए भेड़ों की तरह यात्रियों को ठूंसना शुरू किया। बेचारे ग़रीब यात्री चुपचाप सुनते न तो क्या करते, उन्हें अपने स्थानों पर जाने की जल्दी जो थी! पर मुफसे उसकी यह बकवास न सुनी गई। मैंने उस एजेंट से कह दिया कि यदि त्ने अब और ज़्यादा यात्री इसमें बैठाये तो मैं मोटर को यहा से नहीं हिलने दूंगा।

उसने जवाब दिया, 'ऐसे खादी टांपी वाले मैंने बहुत देखे हैं।'

'पर मुक्त जैसा तुक्ते नहीं दीखा होगा। एक तो सारी रात त्ने इन लोगों को धूल में बैठाये रखा, उनके लिए कोई इतजाम नहीं किया और अब कायदे और कानून के खिलाफ काम करता है; मैं यह सब नहीं चलने दूंगा।' मेरे ऐसा कहते ही यात्रियों का स्वाभिमान जाग उठा श्रीर वे मेरा पच्च लेकर उसका विरोध करने लगे। श्रन्त में मोटर ड्राइवर ने जब श्रन्दर की बत्ती जलाकर मुक्ते ग़ौर से देखा तब चुपके से एजेंट के कान में जाकर कुछ कहा श्रीर मोटर चालू करदी।

धूल में सुवर्ण रज

त्रंधेरा शनै:-शनै: नास्तिप्राय: हो रहा था; सूर्य शनै:-शनै: ऊपर त्रा रहा था। उसे देखकर मेरे मन मे विचार त्राया, यदि इसी तरह जनता के प्रज्ञानरूपी त्राधेरे का नाश हो जाय तो उन्नित का स्योंदय हुए बिना नहीं रहेगा। धूल में यदि तीन घंटे तक मैं न बैटा होता, स्टेशन मास्टर के कहने के मुताबिक स्टेशन की बैंच पर सोकर मैंने वह रात गुज़ारी होती, तो जो सुन्दर विचार मेरे मस्तिष्क में श्राये वे न श्राये होते। इस धूल में सचमुच ही मुफे स्वर्ण-रज की प्राप्ति हुई त्रौर यह मातृभूमि सचमुच ही स्वर्ण की खान है।

क्या यही असंतिकापुरी है ?

कि २४ वर्ष के पश्चात् में इन्दौर को जा रहा था। दिल्ली श्रौर शिमले की श्रोर जाते समय श्रमंक बार रतलाम होकर जाने का मौका श्राता था, उस समय श्रमंक बार मन में श्राता था कि फिर से इदौर श्रौर नीमच श्रादि रथानों के दर्शन करके श्रपनी पुरानी स्मृतियों को जागिरत करूं, पर वह सम्भव न हो पाता था। एक श्रोर इस बात का डर था कि दिल्ली में यदि ठीक समय पर नहीं पहुचा तो हर्ज होगा. श्रौर दूसरी श्रोर इस बात का श्रीममान था कि पूना में श्रपने सिवाय श्रार दूसरा है ही कौन ?

पहिये के ऊपर बैठी हुई मक्खी को यह लगता है कि पहिया उसी के बल पर फिर रहा है। मेरा यह अभिमान भी इसी प्रकार का था। तथापि इतनी बात सही है कि १६२० के बाद अर्थात् हमारे ब्रह्मचारी संघ के आखिरी समासद् की 'विकेट' पड़ने के पश्चात् में इस प्रदेश में नहीं गया। यो हिन्दुस्तान मेरा मातृदेश है, तथापि मेरा प्रत्यच्च जन्म मेवाड और मालवा की सीमा बनी हुई चंबल नद के तट पर मल्हारगढ़ नामक स्थान

पर हुन्ना था। त्रातः इस प्रदेश के साथ मेरी ममंता है। इस प्रदेश के प्रति विद्यमान त्रात्मीयता मले ही किसी की दृष्टि में संकुचित हो, पर मेरे लिए इसकी सार्थकता है।

मालवा भारतवर्ष का धान्यागार समका जाता है श्रौर मेवाड वीरप्रस् भूमि है। ऐसे स्थान के प्रति भला श्रात्मीयता, ममता एवं गौरवानुभूति क्यों न हो ! चवल नदी के समीप एक बारी है श्रौर उस बारी में से होकर ही मेवाड में जाना होता है। इस प्रदेश में "दक्खन की कमाई श्रौर इरिकया में गमाई" ऐसी कहावत मशहूर है। इस हरिकया की बारी में से दिख्या में जाकर खूव पैसा कमाने वाले मारवाडी मारवाड की श्रोर लौटा करते थे श्रौर उस समय श्रिधकाश मारवाडी छुटेरों के शिकार बन जाते थे। वह जमाना श्रब बदल गया है। तथापि यह ऐतिहासिक परंपरा सम्पूर्णतया नष्ट हो गई हो, ऐसा सरकारी रिपोर्ट पढने से नहीं मालूम पडता।

हमारे पूने के (पुनाहरे) के संकेत !

इसी हरिकया की बारी से दो मील की दूरी पर विद्यमान मल्हारगढ़ नामक गाव में अस्मदादिक का (हमारा) जन्म हुआ था; अतः तह शीय लोक-कथाओं के विषय में अभिकाच थी— आज भी वह विद्यमान है। मैंने उस प्रकार का कोई पराक्रम नहीं किया था। गब्बारों की वादी के रहने वाले सारे जंबकतरे नहीं होते। उसी प्रकार पूना के सभी नागरिक नीति-विचच्चण नहीं होते। तथापि किसी स्थान के प्रति ममत्व, उसकी मलाई और बुराई दोनों ही बातों के बारे में रहे तो उसमें कौन बुराई है! यो तो दिच्चण की कमाई को बारी में लूटने के बजाय दिच्चण की ओर से मैं जो कमाई लेकर आया था वह मेरे बाल-मिन्नों के लिए गौरव करने की ही वस्तु थी। हा, मैं कोई एकदम सामान्य यात्री के रूप मे नहीं जा रहा था। मध्य भारत विशार्थी-परिष्ट् के एक मनोनीत श्रध्यत्त के रूप मे जा रहा था श्रीर मैं दिल्या से जो कमाई करके लाया था वह ऐसी वस्तु नहीं थी, जिसे लूटा जा सके। फिर वह कमाई भी लोगों के समफने पर थी। कोई चाहे तो उसे कमाई समफ सकता था। न चाहे तो नहीं। इसलिए उस कमाई के बारे में कोई विशेष श्रास्था श्रथवा श्रात्मीयता भी नहीं थी।

पूना से चलते समय मैंने अपनी जन्म-भूमि के दर्शन करने का निश्चय कर लिया था। गांडियो की अमुविधाओं के कारण तथा टिकटो की अच्चनों के कारण एक दिन पहिले ही मैं बम्बई से चल पड़ा था। रतलाम में एक दिन रहने के विचार से उतरा। मैं चाहता तो तत्काल इन्दौर जा सकता था। पर अध्यक्त को निर्धारित समय से कुछ देरी करके ही पहुचना चाहिए, ऐसा पुराय पत्तनीय संकेत है और वह सदा ठीक ही बैठता है, ऐसा मेरा हढ़ विश्वास था। इसिलये में नहीं गया। और सच्ची बात तो यह है कि यदि मैं २४ घटे पहले ही पहुच गया होता तो परिषद् के सचालकों का रस-भंग हो गया होता और स्टेशन पर उन्हें मुक्त दूँ दना पडता। अतः मैंने रतलाम स्टेशन पर ही ये २४ घंटे गुजारने की सोची। परिषद् के लिए जो भाषण लिखना था उसका साराश मैंने सेकएड क्लास के वेटिंग रूम में बैठकर लिखा और बम्बई मेज दिया। बाकी समय कैसे गुजारा जाय, यह मैं सोचने लगा।

इस बीच एक फ़ौजी स्पेशलगाडी ऋाई ऋौर पुलिस वालो ने हलके हाथों से प्लेटफ़ार्म पर ठहरे हुए यात्रियों को स्टेशन से बाहर खदेड़ना शुरू किया। हमेशा की ऋादत से लाचार होकर मैंने इस मामले में भी ऋपनी चोच लडाई। स्टेशन-मास्टर तक जाने की नौबत ऋाई। उसने पुलिस वालों को पास बुलाया ऋोर उन्हें ताकीद का कि वे ज़रा ऋधिक सभ्यता से पेश ऋाया करे।

'शारदा मंदिर' मे प्रवेश

रेलगाई। का टाइम-टेबल देखने से पता चला कि हरिकया की बारी दंखकर समय पर वापस ऋाना सम्भव नहीं । ऋतः मैंने सोचा, चलो रतलाम गाँव मे एक चक्कर मार त्रायें । कुछ ही फासले पर एक इमारत नजर श्राई, जिस पर 'महाराष्ट्र शारदा मदिर' का बोर्ड लगा हुन्ना था। उस इमारत मे उस वक्त कोई भी नहीं था। त्र्यास-पास भी कोई दिखाई नहीं दिया। गाँव मे पहुच कर कुछ ब्रादिमयों से मुलाकात की। देशी राज्यों में होने वाले ऋत्याचारों की कथा सूनी। महाराष्ट्र शारदा मदिर के सम्बन्ध में मन में जो एक कौतूहल पैदा हो गया था, वह मुक्ते चैन नहीं लेने दे रहा था। श्रतः लौटते समय इस मदिर के दरवाजे के सामने मैं एक घटे तक खडा रहा। श्रान्त मे मेरी यह साधना फल लाई। पास ही मे रहने वाले एक दिच्छा (महाराष्ट्रीय) छोटे बच्चे ने बताया कि बृहस्पति-वार को ६ बजे यहाँ भजन-कीर्तन होता है, त्र्याज गुरुवार है; त्र्यतः यदि श्राप श्राज श्राये तो श्रच्छा होगा । बचा-खुचा नौ बजे तक का वक्त शहर मे इधर-उधर फिरने मे, दही-बडे खाने में विताया । नौ बजे फिर शारदा-र्मादर पहुचा। लगभग १० बजे एक ब्रादमी न दरवाजा खाला। विजली जलाई श्रीर उस प्रकाश में मैंने इस मंदिर का स्वरूप देखा। सब कही धृल ! एक टूटी-फूटी त्रालमारी मे कुछ पुस्तकें दिखाई दी। एक त्रोर हारमोनियम, तबला श्रीर करताल पड़े दिखाई दिये। दो श्रादमी श्रीर श्राये । हम तीनो ने मिलकर मंदिर की सफाई की । मतलब, इधर की धूल उघर कर दी। दरियाँ त्रादि बिछाई। तीन त्रोर त्रादमी त्राये। प्राय: सब रेलवे मे नौकर थे। मैंने श्रपना नाम तो नही बताया पर इतना बताया

कि मैं पूना की तरक का हू। एक ने अगल-बगल में धीमें से गांधी जी के बारे में सवाल किया दूसरे ने बहुत ही धीमी आवाज में पूना के कुछ व्यक्तियों के बारे में पूछा। उन व्यक्तियों में से एक मैं भी था। पर मैंने कुछ भी पता नहीं चलने दिया। भजन के कार्यक्रम के बारे में मैं उत्कटित था। ११ बजे भजन शुरू हुआ। एक प्रोढ व्यक्ति ने एकदता, वक्रतुंडा, बुद्धिच्या नायका, गाना—हॉ, उसे गाना ही कहना पड़ेगा—शुरू किया वह पहले बोलता और सब उसके पीछे बोलते। यही चलता रहा। दूसरा कोई भजन शुरू होगा ऐसा प्रतीत नहीं हुआ और इस सुरीले भजन को और अधिक देर तक सुनने के लिये आवश्यक धैर्थ मुक्तमें बच नहीं रहा था। १२ बज गये थे। अतः अपना यह शारदा-मदिर का अक समाप्त करके मैं लौट आया। प्रतिदिन यह कार्यक्रम नहीं चलता, इस कारण शारदा अवश्य ही इन लोगों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती होगी। नींद में भी इस वक्रतुंड ने मुक्ते चैन नहीं लेने दी। गाडी से बाहर भी अहोगत्र जागरण करना पड़ा और उसका पूरा पुण्य भी मेरे हाथ नहीं लगा।

श्राखिरकार जाति पर ही श्राये

प्रभात होते ही इन्दौर की गाडी में जा बैठा । मेरे स्वागत के लिए आयो हुए कुछ विद्यार्थी मित्र भी वहाँ मिले । हाडी में तैयार की हुई चाय पीते हुए, वास्तविक ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन देते हुए, इन्दौर की पिरिस्थित की जानकारी प्राप्त करता जा रहा था। ठीक समय इन्दौर पहुँचा। तीन दिन का मुकाम रहा। वहा का अनुभव स्वतन्त्र रूप से अन्यत्र आने ही वाला है; अतः यहा ि खने की आवश्यकता नहीं। इन्दौर में रहते समय उज्जीवनी के कार्य-कर्ताओं की ओर से भी आमंत्रण आया। फलस्वरूप में उज्जियनी के लिए चल पड़ा। मेरे साथ कुछ विद्यार्थी कार्यकर्त्ता भी थे। ३० वर्षों के पश्चात् मैं उज्जियनी की ओर

जा रहा था । पहले-पहल मैं अपने एक सम्बन्धी के साथ यहा आया था; उस समय मैं आठ या नौ बरस का रहा हूँगा । उस समय की याद सिर्फ कड़ाके के जाड़े की ही रह गई है । दूसरी बार जब मैं गया तब मैं १६ बरस का था; उन दिनों मैं कालेज में पढ़ता था । उस सयय मेरे साथ एक सरकारी अफसर थे । उस दफा स्टेशन पर उतरते ही बाहर के एक होटल में हम गये और खाने के इतजाम के बारे में पूछा । होटल वाले ने हमारी वेषभूषा से पहचाना कि हम दिच्या हैं और हमारा 'आडनांव' (सरनेम) पूछा। वह बताने पर 'कोकण्यस्थ ब्राह्मण्य' कहकर थोड़ा पीछे की ओर । मेरे साथ के मेहमान का भी नाम पूछा और वे भी कोकण्यस्थ ही हैं यह जानकर वह और भी विचलित हुआ। उसने हमें खाना तो खिलाया पर हमारी पत्तले औरों से जरा दूर-दूर ही रखी । मगर हमारे दिये पैसो को उसने अस्वीकार नहीं किया । किसे मालूम उसने हमसे पैसे भी ज्यादा ही वसूल किये हों ।

उत्तर हिन्दुस्तान मे श्रीर विशेषतः चित्तीड-भेलसा के भाग में दिद्धिणी लोगों से वहा वाले बहुत चिढते हैं। मराठों ने राजपूतो पर बड़ा श्रात्या-चार किया ऐसा कहते हैं। 'हिन्दुस्तान में तीन कसाई, पिस्सु, खटमल श्रीर दिक्खनी माई' वहां की यह प्रचलित कहावत कदाचित इसी बात की साची है। तथापि दिच्चिणी मनुष्य दिच्चिणी मनुष्य का श्रीर वह भी परदेश में इस प्रकार उपमर्द करे, यह थोड़ा खेदजनक है। उस उम्र में मैं यह समम्म नहीं पाया कि ऐसा क्यों होता है श श्राज भी यह चुद्र-बुद्धि कम नहीं हो पायी है। इतनी शिच्चा श्रीर इतनी प्रगति के पश्चात् भी यह भाव कम नहीं हुआ, क्यों नहीं हुआ यह समम्म में नहीं श्राता।

दान के दिन लद् गये

ऐसा बताते है कि उज्जियनी के वास्ते राजपूतो मे तथा बाजीराव

प्रथम में घमासान लड़ाई हुई। चिप्रा नदी, जिसके किनारे उज्जैन वसा हुआ है, खून से लाल हो गई। हिन्दू-हिन्दू मे चलने वाली इस लड़ाई के खत्म होने के आसार नज़र नहीं आते थे। राजपूत लोग कहते थे 'हम रगाग्या में मर मिटेंगे पर पीछे हटेंगे नहीं? | मराठे लोग कहते थे, 'श्रपना मातृ देश छोडकर हम इतने दूर स्राये हैं सो स्रपयश (स्रसफलता) प्राप्त करने के लिए नहीं. प्रत्युत जीतने के लिए आये है।' दोना दल कहते थे 'या जीतेंगे या रणागण मे ही खत्म हो जायंगे।' श्रन्त मे एक चतुर ब्राह्मण ने राजपूत राजा से कहा कि. 'तुम यदि उज्जियन। दान मे दे दो तो यह दिच्चा ब्राह्मण उसे लेने के लिए तैयार हो जायगा।' त्र्योर उस ब्राह्मण ने बाजीराव से भी पूछा कि 'त्र्यापको लडकर ही उन्जयिनी को लेना है ऐसी तो कोई बात नहीं है न ! यदि उज्जियनी स्रापको दान मे मिल जाय तो !' इस पर बाजीराव ने कहा, "दान लेना तो हमारा प्रथम धर्म है। १३ इस पर च्चिपा मे खड़े होकर पानी की अप्रजलि बाजीराव के हाथ पर डालकर राजपूत राजा ने यह सिद्ध कर दिया कि शोर्य पर श्रोदार्य द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। श्रीर वाजीराव ने यह सिद्ध करके कि 'धर्म वस्तुतः व्यवहार है' श्रपने को 'साधनानामनेकता' इस तत्व का श्राद्य प्रतिपादिक सिद्ध किया। यह पुरातन राजकारण (राजनीति) श्राज के जगत् में कितना दुर्लम हो गया है! त्र्याज भूलो-भटकी बकरियों को भी कोई खड़ोबा (मराठो का देव) पर बिल चढ़ाने के लिए तैयार नहीं. तब हाथ में ऋाई हुई सत्ता किंवा सम्पत्ति को दान मे दे डालने की नात तो दूर रही।

वैद्यराज श्रीर भाजी वाली

उज्जयिनी शहर मराठों के हाथ में किस प्रकार आया इसका उपरि-वर्णित इतिहास मैं अपने सहयात्री विद्यार्थी कार्यकर्ताओं को बता रहा था, इस बीच हमारी रेलगाड़ी चिप्रा स्टेशन के समीप श्रायी। जिस चिप्रा नदी का वर्णन कालिदास ने ऋपने काव्य मे किया है, उस भाग्यशालिनी नदी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करके बडी प्रसन्नता हुई। चिप्रा की तरगो का सहवास प्राप्त करके आने वाला 'अनिल' सर्दी के दिन होने के कारण त्रानन्द प्रदान करने के स्थान पर थोड़ा त्रास देने वाला ही सिद्ध हुआ । थोडी ही देर में हमारी गाड़ी उज्जैन स्टेशन में प्रविष्ट हुई। कार्येस तथा महात्मा गा ी के जयकारों से हमारा स्वागत हुन्ना। न तो किसी ने हमार नाम पूछा न कोई बिदक कर पीछे को ही हटा। सारे स्टेशन पर खादी टोपी व लो का ऋपार समुदाय एकत्र था। पूलो के एवं सूत के बने हारो की गराना करने की 'सावरकरी' ख्रादत नहीं थी, ख्रतः मैंने उन्हें गिना नहीं । तथापि नेतागिरी का यह बोक्त कुछ कम भारी नहीं था। भरी हिन्दी में बातचीत को सुनकर अनेक को आनन्द हुआ और कुछ श्रचरज भी हुन्ना । कालिदास की इस नगरी में संस्कृत भले ही चालू न हो, तो भी संस्कृतमय हिन्दी यहा का चालू सिक्का है। निःसश्य यह ऊपर के दर्जें के लोगों मे ही है। ऐसी हिन्दी सब्जीमडी की भाजी वाली के साथ बातर्चात करनी हो तो किस उपयोग मे आयेगी ?

ऐसा कहते है कि पूना के एक प्रख्यात वैद्यराज कुछ वर्ष पूर्व उज्जियनी मे त्राये थं, उन्हें ने एक जगह भाजी की त्रोर श्रङ्कली का सकेत करते हुए एक कु र्जांडन से पूछा, ''इस वस्तु जात का क्या मूल्य है ?'' पर उस कु र्जांडन को इस व.क्य का श्रर्थ ही श्रवगत नहीं हुन्ना। यह देखकर वैद्यराज को श्रद्धाधक श्राश्चर्य हुन्ना। 'बाधित बाधते' की बाते सुनने वाले शास्त्री बाबा की कल्पना कदाचित् ऐसी रही हो कि इस श्रवन्तिक। पुरी मे सामान्य ललनाएं भी श्रद्धाधक सस्कृत-पटु होती है।

क्या यही उज्जैन है ?

दो दिन के मुकाम मे सवत्सरकर्ता विक्रमादित्य की राजधानी मे अनेक हर्य देखे और अनेक अनुभव प्राप्त किये। मर्नु हिर को 'शतकत्रय' लिखने की प्रेरणा करने वाले इस नगर मे आज ऐसा कुळ भी नहीं रह गया था, जिससे किसी को कोई प्रेरणा मिल सके। कही भी नवरत्न सभा हिष्टिगत नहीं हुई। इसके विपरीत सर्वत्र 'शाभवी' के ही अड्डे दिखाई दिये। कालिदास के नाम से शाला गृह तथा विद्यालयों के दीखाने के स्थान पर उपाहार-गृह और नापित-गृह ही देखने का प्रसग आया। पूना में भी शिवाजी, लोकमान्य, गांधी आदि के नाम ऐसी ही दूकानों से सलग्न नजर आते है न! कदाचित् लोकतत्र और समताभाव का यह प्रमाण होगा। इतिहास मे अमरपद प्राप्त करने वाली इन वस्तुओं को अमरपद क्यों प्राप्त हुआ इसका कारण पार्थिव हिष्ट से दिखाया जा सकने वाला बच नहीं रह गया है। इस नगर का देव 'श्री महाकाल' कितने ही शतकों से भूमिगत (अंडरग्राउन्ड) हो गया है। विक्रम सिर्फ सवल्सर ही में रह गया है, वैभव सिर्फ स्मृति में। 'आहे साप्रत उडजनी नगर ते राज्यात शिद्याचिया'। पर वहां भी वैभव अथवा आधुनिकता नहीं है।

चैतन्य लाभ

दो दिनों के मुकाम में भिन्न-भिन्न पाच-छः जगहों पर चर्चा श्रौर व्याख्यान हुए। कहने की ज़रूरत नहीं कि यह सब हिन्दी ही में हुआ। कुछ अभिसीमित श्रौर कुछ सार्वजनिक भाषण हुए। पर इस सर्व मुकाम में श्रवन्तिका के प्राचीन वैभव श्रौर श्रदातन दैन्य के मध्य विद्यमान श्रन्तर के कारण कुछ खिन्नता की छाया ही की पृष्ठभूमिका रही। उस खिन्नता में विभिन्न कार्यकर्तागण श्रद्धौस-पद्दौस के संस्थानिकों (नरेशों) के श्रात्याचारों की कथाए सुनाकर श्रौर वृद्धि ही करते जा रहे थे। बगैर

किसी पूछ-ताछ के लोगों की गिरपतारी, स्त्रियों पर अत्याचार, गरीबी, अविद्या, जनता का शोषण, पश्चालद मिल्ल लोगों के साथ अमानुष व्यवहार, आदि विषयक वृत्तान्त कथाओं को सुनते सुनते चित्त विषयण सा एवं शुन्यप्राय सा हो उठता था। उसी प्रकार प्रचलित राजनीति में भाग लेने वाले कार्यकर्ताओं के बीच विद्यमान विरोध भी चित्त को दुःख देता था। कोई कामरेड आये और आकर शिकायत करने लगे कि ये कांग्रेस वाले पूंजीपतियों की वकालत करते हैं। कांग्रेस वाले इसका उत्तर यो देते कि ये कामरेड जिनकी तरफदारी कर रहे हैं वे सारे खेतिहर उनके पिताओं के देनदार हैं।

इसी चाल पर ये सारे कार्यकर्ता मौजूदा राजनीति को चला रहे थे। इस मौजूदा हालत से ऊपर उठकर यह देश फिर कब ैमव को प्राप्त करेगा श्रीर जगत् के लिए ललामभूत विद्वान कब पैदा होगे! फिर कब संवत्सरकर्ता विक्रम का निर्माण होगा! पराक्रम को महाकाव्य द्वारा चिर-स्थायी करने वाला महाकिव कब श्रायगा १ शौर्य्य एवं शृंगार इन दोनो रसो का सुन्दर सामजस्य समाज मे एव काव्य मे कब देखने को मिलेगा! इसी प्रकार के श्रनेक विचार देर तक मन मे श्राते रहे। विदा लेने से पहले 'पुरुषस्य भाग्यम्' नामक लोक-कथा में न्याय देने वाले महाकाल के दर्शनों के लिए गया एवं श्रद्धापुक्त श्रन्तःकरण से प्रार्थना की, ''भूमि पर का श्रन्याय श्रसह्य हो गया है। प्रकट हो श्रीर जो हमारा है वह हमे मिलने दे।' श्रन्तःकरण मे मिलने की श्राशा श्रनुभव होने लगी। श्रीर इस प्रकार श्रवन्तिका का श्राना सार्थक होगया। सच्चा चैतन्य पाकर मैने श्रवन्तिका से विदा ली।

कांग्रेस का राज्य आया तो-

उस दिन कोई कार्यक्रम नहीं था। न कही व्याख्यान, न कोई अनीपचा-रिक चर्चा—कोई भी तो बात ऐसी नहीं थी, जहां मेरे उपस्थित रहने से किसी की शोभा में कुछ वृद्धि हो। कहीं नोई उद्घाटन का कार्यक्रम नहीं था, या ऐसी भी बात नहीं थी कि किसी पत्र-प्रतिनिधि को ज़बर्दस्ती बुलाकर और चाय पिलाकर उसे मुलाकात दी जाय या किसी महत्वशाली व्यक्ति से मिला जाय।

उस दिन मेरे लिए कोई 'कार्य' नहीं था। इतना ही क्यों, किसी को साथ लेकर बोलपट (सिनेमा) देखने भी नहीं जाना था। छुठे छुमाहे कभी एकांध दफा बोलपट देखने का मौका मिलता था ऋौर जोडी से सिनेमा देखने का मोका तो समिभ्यं किपलापष्ठी का योग ही था। तात्पर्य उस दिन की सांभ किस प्रकार गुजारी जाय इस बात पर मैं विचार कर रहा था। हर रोज के मेरे जोड़ीदार भी ऋाज मेरा साथ देने वाले नहीं थे, एतावता, ऋाज मैने नये पुल पर जाने का निश्चय किया!

हमारा मारुति वीरों का है

घमने के लिए हाथ मे लाठी लेकर बाहर निकला । मस्तिष्क मे अपन्य कोई विचार नहीं था; स्रातः स्वभावतः मेरा ध्यान पैरो के नीचे के रास्ते की श्रोर गया। रास्ते मे ब्रिटिश-नीति-विचन्न गो के निवेदन की श्रपेता भी ऋषिक गड्ढे दिखाई दिये । दोनो किनारो पर घर थे । इसी ऋाधार पर इस बीच के भाग को रास्ता कहने के लिए विवश होना पडता था। कालांतर से मनुष्य की कीर्ति पर आने वाले धब्बे जिस प्रकार धुलकर साफ हो जाते हैं, उसी प्रकार उस रास्ते का नारकोल भी नास्तिप्राय हो गया था। हमारे उस रास्ते पर चू कि कोई 'माननीय' (श्रानरेबल) नही रहता था, त्रातः रास्ते की मरम्मत का शुभ मुहूर्त हमारे लिए उदित नही हो पाया था । यह भी सुनने मे त्र्याता था कि मिलने वाला तारकोल सभासदों के कारखानो ही में खत्म हो जाता था। संसार का यात्रापथ विकट है। इसका यदि प्रत्यन्न दर्शन करना हो तो हमारी गलियो के रास्ते देख लीजिए । रास्ते की ग्रावस्था के कारण सरल चलने वाली स्त्रियों के पैर भी वालिदास के शब्दों में 'विषमी भवन्ति' की अवस्था में श्रा जाते थे । श्रीर जब मै गुजर रहा था उस समय 'कांग्रेस का मंत्र-मंडल बन जाने पर भी तेरे हाथ का उस्तरा थोड़े ही छुट जायगा' ऐसी श्रावाज नामू की द्कान से श्राई। संभवतः किसी महानुभाव ने मुफ्ते देखकर ही ऊची त्रावाज मे ये उद्गार व्यक्त किये थे। नामदेव का सैलून वास्तव मे एक वाचनालय ही था । उसके धंधे के ग्राहको की ऋपेचा इसमें सुफ्त के पाठकों की ही संख्या बढी-चढी रहती है। (धीमें से कहता हूं, कभी-कभी मै भी ऐसो मे शरीक हो जाता हूं।) उपर्युक्त वाक्य मैंने सुना, पर वहां न ठहरते हुए मै चुपचाप यहाँ से आगे हो लिया और श्रपने 'वीरो के मार्कत' के पास श्राया । पाठको को मै रहस्य की बात बताऊं ? हमारा यह मारुति वीरो का है श्रीर गत ५० वर्षों में उसने श्रपनी यथार्थता सावित की है।

भैसे और मोटरें

कुछ त्या मन में विचार श्राया कि पहले के निश्चय को बदलकर श्मशान में से होते हुए नदी के परले पार निकल जाऊ। पर फिर विचार किया कि नये पुल पर जाकर टहल श्राने के विचार को तिलाजिल देना टीक न होगा। सामने की श्रोर चलने लगा। टूटे बुर्ज की श्रोर देखकर किनारे-किनारे से मैं चल रहा था, क्योंकि बीच में से होकर निक्लने की सुविधा ही नहीं है इस रास्ते पर। सवेरे भैंसो का, दोपहर को मास्टरिनयों का श्रोर साम को मोटरों का तांता ही इस रास्ते पर बंधा रहता है! इस श्रानिपरीचा में से निष्कलंक उत्तीर्ण हो जाना एक बड़े भाग्य की बात है। मैं रास्ते के किनारे पर चल रहा था। मेरा ध्यान किसी दूसरे की श्रोर मले ही न रहा हो पर दूसरों का ध्यान मेरी श्रोर नहीं था, यह नहीं कहा जा सकता था। कारण, तत्काल दाई श्रोर के एक मकान से 'श्रहों काका साहब!' ऐसी श्रावाज श्राई। श्रमण में विष्न उपस्थित हो गया! मुमें उन सज्जन के घर जाना पड़ा।

हमारे नाना

दरवाजे में से अन्दर घुसते ही उन सज्जन ने कहा, "परमेश्वर ने आज हमारी शिकायत सुन ली; सुभे कितनी खुशी हो रही है !" मैं अलबत्ता मन मे अप्रसन्न था। उस अप्रसन्नता से ही मैं अन्दर गया। गर्मी के मौसम में भी जमीन गीली ही थी। हो सकता है, गर्मी से बचने के खयाल से मकान मालिक ने ही ऐसा इन्तजाम कर रखा हो। कमरे में एक मैली सी दरी पड़ी थी। उसपर एक तिकया था, पर वह ब्रह्म की मांति माया विरहित था अर्थात् उस पर गिलाफ नहीं था। दरी पर रगीन

दाग़ नज़र आ रहे थे। वह कितनी पुरानी थी यह बतलाना आसान नहीं था। तथापि आदर्शनिथ्य में नाना कुछ कम नहीं थे। उन्होंने मुफे ढासने के लिए उस तिकये के पास वैटाया। आख में ऑस् भर कर बड़े करुणाकुल स्वर में नाना कहने लगे, 'अजी, अब हमारी और देखिए न, अब हम लोगों के मरने की बारी है!" नाना हमारी पैंठ में एक होनहार व्यक्ति हैं। कोई भी व्यक्ति उन्हें काम के लिए बुलाये वह फाटपट हाजिर हो जायेगे। गण्पित उत्सव हो, मारुति उत्सव हो, नाना काम करने के लिए सदा नत्यर रहेगे।

नाना निरुक-निर्विजेन ग्रहस्थ हैं। एक-दो दूकानो पर लिखापढ़ी का काम करते है तथा बाकी का चरितार्थ (उदर-निर्वाह) मिचुकी के द्वाग पूर्ण करते हैं। १६४२ से पहले तक उनकी हालत ऋच्छी थी, यह मुफे मालूम था; ऋतः उनकी इस करुगाकुलता का ऋर्थ मेरी समफ में नहीं ऋाया।

राशिनंग के कारण धर्म डूब गया

''श्रजी, श्रापके इस राशिनग के कारण हमारा धर्म तो डूब ही गया; श्रब हमारे प्राणों के भी निकलने का वक्त श्रा रहा है!" नाना के इन शब्दों को सुनकर मैंने उनसे पूछा—''श्राप क्या कहना चाहते हैं ?" नाना व्याकुल हो कहने लगे, ''छठे-छमाहे एकाध दफा गेहूं खाने वाले हम लोगों को श्रब हर रोज गेहूं-ही-गेहूं खाना पड रहा है! हर रोज कैसे खायं ! उसके लिए श्रावश्यक धी कहा से लाये ! श्रजी, बाजरे की तो श्रब याद ही रह गई है! श्रहा! रात के वक्त का थालीपीट (एक खास महाराष्ट्रीय चीज) खत्म हो गया, मक्खन श्रहश्य हो गया श्रौर जवारी का तो क्या कहना, उसकी तो सुगन्धि तक नहीं श्राती! श्रौर चावल हफ्ते मे श्राध सेर भी मिल जायं तो समिंभए देर-के-देर मिल गये।

चित्राहुति (भोजन समय का सस्कार) तक नहीं डाल सकते । "श्रात्मानं सतत रहेत्" के न्याय से भात की चित्राहुतियों हमने बन्द करदी। श्राजी, धर्म हूव गया ! श्राद्धपद्ध में से पिडदान उठ गया ! पितर कैसे संतुष्ट होगे ? कहीं, युद्ध श्रोर देर तक चला तो क्या होगा ? श्राजी, यह पाप श्राव देखा नहीं जाता ! ये देखिए हमारे बच्चे ! ज्योदी उन्होंने यह कहा त्योही लडके-लडकियों का एक मजमा कमरे में चला श्राया । छुटाक से ले र पसेरी तक के जैसे कमवार बाट रहते हैं वैसी ही यह बालसेना दिखाई देती थी । सध्या के चौबीस नाम लगभग खत्म ही हो गये होंगे, श्रीर बंगाली नामों पर भी श्राक्रमण हुस्रा होगा, एसा प्रतात होता था ।

चावलो के श्रभाव में

नाना की पत्नी को विवाह के समय दिया गया त्र्राशीर्वाद त्रज्ञ्रशः सत्य हुत्रा नजर त्र्राता था। (महाराष्ट्र मे वधू नो 'त्र्रष्टपुत्रा सोमाग्यवर्ता भव' यह त्राशीर्वाद देने की प्रथा है) 'त्र्राजी काका, यह देखिए हम ब्राह्मणों के बच्चों की चावलों के त्र्रामाव में हुई दयनीयावस्था! सम्प्रति कहीं भी श्राद्धपन्द-ालिक मोजन नहीं। लग्नकार्य (विवाह) में हाथ भीगता नहीं। ''परमासे धरमासे भवन्तों ब्रुवन्तो'' की निक्फल बकवास करनी पडती है। देखिए, त्र्रापही देखिए, इन बच्चों की निकली हुई हिंडुगाँ देखिए।''

मैंने बच्चों की ऋोर देखा। साधारणतया नाना का कहना सही था। एक ब.र मन मे आया भी कि कहूं ढेर सारे बच्चों को पैदा ही क्यों किया १ पर यह सवाल मुक्ती पर उलट सकता था, ऋतः मैंने पूछा नही।

मैंने उनसे कहा, ' श्रजी, सरकार ने तो ऐसा छापा है कि मुख्यतया भात पर ही गुजारा करने वाले मनुष्य को हर रोज १० श्रीस चावल, ५ श्रीस धान, ३ श्रीस दाल, ८ श्रीस दूध, २ श्रीस फल श्रीर १० श्रीस भाजी-तरकारी त्रावश्यक है।"

उन्होंने मुक्तसे पूछा, "श्रीस किसे कहते हैं, यह तो बताइए ?" मैंने कहा, "च्राण-भर को मान लीजिए श्राधा छुटाक !"

इस पर वह बोले, ''इसका एक चौथाई हिस्सा भी अपने को नहीं मिलता! भाजी तो नजर में ही नहीं आती। और एक रूपए का सेर दूध मैं कैसे लूँ! काले बाज़ार में चावल मिलते हैं, पर पैसे कहां है! पुनश्च, इस प्रकार के मुकदमें भी गरीबों पर ही होते हैं। आज यदि किसी को आराम है तो वह पैसे वालां को आरे पुलिस वालों को। उन्हें किसी भी बात की कमी नहीं है।"

मैंने कहा, 'नाना, त्रापका कथन सर्वाशतः सत्य नहीं है। यदि पूना के लोगों को यह असत्य प्रतीत हुआ होता तो उन्होंने सगठित होकर प्रतिकार किया होता। बम्बई में अधिक 'सीधा' (गशन) मिलता है। अधिक चावल मिलते हैं। पूना जिले में आबे मोर (उम्दा चावल) पैदा होता है और पूना के हिस्से में घटिया चावल आता है। यह सब इसलिए चल रहा है, क्योंकि आप लोग इसे बर्दाश्त कर लेते हैं!"

"गलती है ऋ।पकी, ऋ।प का रेसवालों ने सता त्याग दी, उसके कारण इम लोगों की यह दुर्दशा हो रही है !" नाना बोले।

' श्रजी, जब हम श्रिषकारारूढ थे तब हम धर्मध्वसी है, मुसलमानों को सिर पर वैटा लेने वाले है, श्रिषकार से चिपके रहने वाले है, ऐसा श्राप लोगों के नेता श्रीर समाचार-पत्र ही कहा करते थे न १ श्रोर जिस दिन हमने श्रिषकार त्याग दिया उस दिन 'मुक्ति-दिवस' मनाने वालों में श्राप ही लोग तो थे ! श्रीर श्राज भी श्राप लोगों के 'स्वातन्यवीर' श्रग्नेज़ों का ही कारोबार श्राच्छा था, ऐसा कहते है न ?''

''ग्रजी काका, ग्रव उन पुरानी बातो को जाने दीजिए। पेट-भर

श्रश्न नहीं मिलता, ठीक से कपड़े नहीं मिलते । हम जनता हैं न ! श्रापको स्वराज्य पाना है, उसके लिए जनता की नं ना है या नहीं ! या कब्रिस्तान का स्वातंत्र्य श्राप चाहते हैं ! कुछ भी कीजिए, पर हमें जिंदा रिखए!"

बिलकुल ऐसे ही शब्द सन् ४३ के आखिर में नासिक जेल के अदर वहां के एक सिपाही के मुंह से भी सुने थे। वहा राशनिंग अभी शुरू नहीं हुआ था। बाजार में गरीबों को अनाज नहीं मिलता था। रात को पहरे के वक्त हमारे कमरे के पास आकर वहा के पहरेदार हवालदार ने भी यही विचार प्रकट किये थे—'आप सब हम लोगों के लिए कष्ट-सहन करते हैं, यह सच है। आप राज्य हासिल कर लेगे, यह भी सच है। पर उस राज्य में सजीव प्रजा तो होनी चाहिए न! कुछ भी कीजिए हमें जीवित रखिए!'

उसके ये शब्द मनश्चन्नुत्रों के सामने आये। मैने नाना से कहा, "आप जो कुछ कहते हैं वह सब सच है। पर यह सग्राम किस लिए आरम्म हुआ है, यह आपको याद है न १ पैठनी (एक कीमती वस्त्र) की मांग करके अन्त मे एक थिगरा लेकर संधि करले क्या १ आप लोगों को धीरज रखना चाहिए। दुर्गतियों का हलाहल पीकर ही जनता स्वतंत्रता प्राप्त करेगी। यह सब आने को भोगना ही चाहिए। अन्य देशों में स्वातत्र्य के लिए बडे पैमाने पर प्राण्यार्पण करना पड रहा है, उसके मुकाबले मे हम इतनी प्रचंड वस्तु के लिए क्या कीमत दे रहे हैं १ यदि आप जैसे शिक्ति व्यक्ति ही प्रतिगामी विचार रखने लग जायेंगे तो काम कैसे चलेगा १ अधपेट खाकर कैसे रहना चाहिए यह तो मालूम है न १"

"श्रजी, सबके लिए श्रिधिकार लीजिए। इमे भी श्रिधपेट मत रिलए, श्रीरों को भी मत रिलए!" नाना ने कहा।

चावल तो मिलेंगे ?

नाना का विचार तक शुद्ध था। पर तर्क से आ्राज तक किन प्रश्नो का समाधान हुआ है ? मैंने उनसे कहा, "मान लीजिए, काग्रेस ने ऋधिकार प्रह्ण कर लिया, तो उससे आपके विचार में ऐसी कौन सी क्रान्ति आपके 'सीधे' में उत्पन्न हो जायगी ?"

"निदान (कम-से-कम) एक पउन्ना-भर चावल तो ज्यादा मिलेगे, इतना तो होगा न ?" नाना ने कहा।

मैं उनके इस वाक्य को सुनते समय उनके नेत्रों की ख्रोर देख रहा था। उनमें मूर्त्तिमान कारुएय निवास कर रहा था। उनमें ख्राशा भी प्रतिफलित हो रही थी। मैंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ख्रौर चाय के ख्राग्रह को भी अस्वीकार कर दिया।

उस समय मेरे मिस्तिष्क मे दूसरे ही खयाल आ रहे थे। स्वातंत्र्य के लिए प्राणार्पण करने का उपदेश करने वाले, परकीय सत्ता की नौकरियों के पीछे पड़े हुए नवयुवक मेरी आखों के सामने आ रहे थे। स्वातत्र्य के लिए घर-द्वार पर अग्नि रखने के लिए कहने वाले, किरायेदारों का किराया अनेक गुना बढ़ाकर उनका शोषण करने वाले मुक्ते दीख रहे थे। 'स्वदेशी वस्तुएं स्वराज्य का मूलमंत्र हैं' कहकर हमारी भावनाओं का अवैध पायदा उठाकर नफेबाजी में करोड़ों रुपये पैदा करने वाले 'त्यागी' गाधी-भक्त मेरी आखों से ओक्सल नहीं थे। सूर्य के अस्त हो जाने पर, चन्द्र के अप्रकाशित रहते समय, तारों के भी टिमटिमाने से पूर्व यदि खुगन् न चमके तो और कौन चमकेगा ? देश की स्वतन्त्रता के लिए छाती पर गोलिया केलने वाले, सिर पर लाटी पड़ने के कारण लोहू जुहान हुए देशभक्त भी मेरी आखों के सामने आते थे। उसी समय बहती गंगा में हाथ पखारने वाले देशभक्ति का ज्योतिरिगन की भाति प्रकाश फैलाकर

अपने आदर्श का व्यापार करने वाले लद्मीपुत्र भी आंखो के सामने खडे थे। इन सबसे मैं कुछ भी नहीं कह सकता था। अन्याय, घूं सखोरी श्रीर पाप का साम्राज्य सर्वत्र फैला हुन्ना देखकर महात्माजी उपवास करने की सोच रहे थे। समाजांतर्गत यच्चयावत् वर्णों मे नैतिक ऋधः पतन हुआ दृष्टिगत हो । या । ऐसी स्थिति मे एक गरीब ब्राह्मण द्वारा ऋधिक चावलों के लिए ऋधिकार स्वीवार करने का ऋग्रह किये जाने में जो एक विडंबना छिपी हुई थी वह 'क्तमस्व' कहने योग्य ही थी। उत्कट से लेकर उच्छिष्ट पर्यन्त सब की यही गति थी। वह त्र्यादर्श के ऋनुरूप नही थी यह भी सत्य है। पर उसमे कुछ ऐसी सचाई अवश्य थी जिसे मजूर किये बगैर नहीं रहा जा सकता था। 'जीना है या मरना है ?' इस सवाल का उसमे उत्तर छिपा हुन्ना था। कुछ लोग कहेगे कि ऐसे श्रादश-शून्य जीवन की श्रपेत्ता मर जाना श्रच्छा श्रौर कुछ लोग कहेंगे कि श्रादशों का श्रास्तत्व जीवित मनुष्यों के ही लिए है: श्रतः वे जीवित रहने को अपना आद्य कर्त्तव्य समभेगे । और मै ऐसा कौन हूं जो दूसरे प्रकार के लोगो को बुरा-भला कहूं ? वापस जाते समय रास्ते की भीड के वारण मेरी विचारों की लड़ी टूट गई, तथापि सारी रात-भर उस ब्राह्मण की दीन मुखमुद्रा श्रीर 'पउत्रा-भर चावल तो श्रिधक मिलेंगे' यह वाक्य मेरे श्चन्त:करण के सामने बना ही रहा ।

(यह लेख १६४५ में मराठी में लिखा गया था। उस समय किसी भी प्रांत में काग्रेसी-मंत्रिमडल न था।)

तक तो सभी मुनीर !

प्राण्ण मेरा स्कूल के दिनों का मित्र है। किन्ही कारणों से कालेज की पढाई अधूरी छोडकर उसे नौकरी के लिए विवश होना पड़ा। श्राज उसकी हालत सतांत्रजनक है तथा दुनिया की निगाह में वह पूर्ण सुखी है। पढ़ाई-लिखाई उसकी मले ही छूट गई हो पर ज्ञानप्राप्ति की उसकी आकांचा कभी नहीं छूटी। उसका अध्ययन विस्तृत, विचार व्यापक, एवं दृष्टि श्रेष्ठ-वस्तु अहंग्एशील है। अचिलत राजनीति को वह अच्छी तरह जानता है और इसी कारण अनेक बार उसके साथ विचार-विनिभय करने में तथा वादविवाद करने में मुभे आनन्द अनुभव होता है। इतना ही नहीं, कई बार तो उसकी जानकारी का मुभे फायदा भी खूब होता है।

जेल से छूटकर त्राने के बाद हमेशा की भाति उसने मुक्ते चायपान के लिए घर बुलाया तथा इस बार की जेलयात्रा के त्रानुभव पूछे।

मैंने उसे सुनाना शुरू किया—''सरदार गृह मे ६ ऋगस्त को तड़कें ही पकड़-धकड़ की खबर हमें मिल गई थी। वम्बई जाने से पहले ही हम समभ्त गए थे कि फिर पूना हम नहीं लौट सकेंगे। सीधा यरवदा की श्रोर रवाना होना पड़ेगा। श्रपने घरवालों को भी हमने यह समभा दिया था। तथापि गांधीजी के भाषण से एक महीने तक तो कुछ नहीं होगा, ऐसा हमें प्रतीत होता था श्रीर इसके कारण हम लोगों में से बहुत से लोग सरदार-गृह में नि:शक थे।

६ श्रगस्त को प्रातःकाल के समय पुलिस वालों ने सरदार-गृह को घेर लिया वहा मैं पकड में नहां श्राया, यह सही है, तो भी शिवाजी नगर पर रेल से उतरते ही श्रन्य श्रनेक कार्यकर्ताश्रों के साथ उसी दिन दोपहर के वक्त पकड लिया गया। ६ श्रगस्त की रात हमने यरवदा ही में व्यतीत की।

१० ग्रास्त को सबेरा होने से पहले से यरवदा की सारी बैरके भर गई । कुल जमा ग्राठ-दिन ही मे कैदियों की सख्या हजारों में हो गई। नियमानुसार ग्रोदना-बिछाना, कपड़े, भाडे-बर्तन कुछ भी मिलना मुश्किल हो गया। जेल के ग्राधिकारी घबराये हुए नजर ग्राते थे। घटे-घटे बाद दिन को भी ग्रार रात को भी राजकीय कैदी नारों के साथ यरवदा-मिदर में प्रवेश करते थे। बैरकों में नियम का मंग करके ग्रादमियों को टूसा जा रहा है। जेल के ग्राधिकारियों के लिए ग्रानेक प्रयत्न करने पर भी इन्तजाम करना किटन हो गया था। सब राजबिदयों की तरफ से जेल के ग्राधिकारी मेरे साथ बहुत बाते ठहराते थे। उनकी लाचारी मुफ्ते स्पष्ट नजर ग्राती थी। राजबिदयों की श्रमुविधा, कष्ट ग्रीर उनका गुस्सा प्रतिच्चा मुफ्ते ग्रानुमृत होता था। ग्राखिर में मेरे कहने पर हमारे साथियों ने बैरकों में जाने से इन्कार कर दिया। नियमानुसार प्रत्येक को जगह देने के लिए ग्राम्रह किया। यरवदा के ग्रासपास मिलिटरी सर्वत्र फैली पड़ी थी। मैंने ग्राधिकारियों को सुफ्ताया कि उन सैनिकों के पास से तम्बू लाकर इन्तजाम किया जाय। उसे उन्होंने मंजूर कर लिया। दो-चार दिन में सर्वत्र तम्बू गाइ

दिए गये त्रीर जेल को फीजी छावनी का स्वरूप प्राप्त हुन्रा। हमने निश्चय किया कि त्रपना सारा इन्तजाम हम खुद देखेंगे, फलतः हमारी इस बस्ती को कुछ काल के लिए स्वय-शासित उपनिवेष का स्वरूप मिल गया। रसोई का काम करने वाले, परोसने का काम करने वाले, चिट्ठीरसाँ का काम करने वाले, व्यायाम का इन्तजाम करने वाले सब हमी लोगो में से थे; सारा काम करने जाने करने जाते थे वे भी सब प्रसन्न थे।

इस जानकारी को सुनकर ऋग्णा ने कहा—"तब तुम नेताऋों का तो ऋौर भी ज्यादा इन्तजाम रहता होगा।"

"वैसी कोई बात नहीं थी। यह ठीक है कि जेल में सबसे मुफ्ते आगे कर रखा था; परन्तु उसकी वजह से हमारे लिए कोई खास इन्तजाम किया गया हो, सो कुछ नहीं था। इसके विपरीत अधिकारियों और कैदियों में जो भगडे पैदा हो जाते थे उन्हें मिटाते-मिटाते हमारी नाक में दम आ जाता था। तो भी एक बात ध्यान में रखने योग्य है। वह है, मुनीर नाम का कैदी।"

"यह ऋौर कौन कैदी है ?"

''यह काली टोपीवाला कैदी।"

''काली टोपीवाला १'' ऋष्णा ने पूछा।

"हा, जिस कैदी ने एकाधिक बार सजा हासिल करने का पराक्रम किया हो, वहां उसे काले रंग की टोपी पहनाई जाती है। इतनी बात जरूर है कि सजाएं सपित विषयक अपराधों की होनी चाहिए। उनको ही अधिक मान दिया जाता है। पूंजीवादी समाजरचना में जीवित की अपेद्या वित्त को अधि समस्ता जाता है श्रीर उसका ही संरत्त्रण अधिक किया जाता है। काली-टोपी की तरह जेल में लाल और पीली टोपिया भी होती

हैं। पाच से ऋधिक वर्ष की सजा वाले कैदी को पीली टोपी पहननी पड़ती है। घोखेबाज ऋौर भागने की कोशिश करनेवाले कैदी को लाल टोपी दी जाती है। ऋनेक कैदियों की टोपिया दुरगी रहती है। सन् ३१ में हमारे वार्ड में एक तिरंगी टोपीवाला भी कैदी रहता था। उसे बाबू चश्मेवाला कहते थे। सुनीर था तो कालो टोपी वाला पर वह उतना ही ईमानदार ऋौर खुले ऋन्तःकरण का तथा सच बोलने वाला था।

"तो फिर मतलब यह हुआ कि चोर भी ईमानदार होते हैं ?" श्रयगा ने कहा।

''जितनी मात्रा में चोर ईमानदार हो सकते हैं उतनी मात्रा में !'' ''इस मुनीर की बात तो सुनाइए !''

"यह मुनीर जब तक हमारे तम्बू मे रहा बिलकुल नियम से मेरा सारा काम करता रहा। जो भी बात उससे कहते वह बिलकुल ठीक से कर दिया करता। इतना ही क्यों, हमारे तम्बू मे रहने वाले अन्य दो राजबन्दियों के बारे में वह अधिक आदर नहीं दिखाता था और अन्य राजबन्दी उसके बारे में हररोज़ शिकायत भी किया करते थे। मैं समभा करता था कि अपने लोगों में मैं प्रमुख हूँ इसीलिए शायद वह मेरे प्रति इतना आदर प्रदर्शित करता है अरे मेरे लिए इतनी महनत करता है। यही समभकर मैं उसके साथ व्यवहार किया करता था। पर एक दिन हमारे में से एक बन्दी ने उसके इस व्यवहार का मेद म.लूम कर लिया। जब मैंने उसे सुना तो मैं चिकत रह गया। मैंने उसे बुलाया। उसने सुभसेकहा:—

'त्रापके प्रति मेरे हृदय मे विद्यमान त्रादर-बुद्धि का जो कारण त्रापको विदित हुन्ना है वह सत्य है। गत बीस बरसों मे मैंने त्रानेक चोरिया की हैं, पर मुफ्ते कुळु बहुत ज्यादा प्राप्ति उससे नहीं हुई। मैने कमा किसी की हत्या वगैरह नहीं की । मेरे किसी भी ऋपराध में ऋपको हिसा दृष्टिगत नहीं होगी । मैने किसी के घर में सेध नहीं मारी, कहीं बटमारी नहां की । जेब काटने के चाकू को छोड़ अन्य कोई शस्त्र मैने हाथ में नहीं लिया।"

"यह धधा तू कब से करता आ रहा है ?"

'गत बीस बरसो से ! पहले बाल-श्रपराधी समसकर मुसे श्रपराधी लड़कों के कैदख़ाने में डाला गया था। वहीं मैंने यह कला श्रिषक हस्तगत की। कही समा हुई, या भीड़भाड़ हुई तो वहा में जाता श्रीर शात रीति से एक-दो सेकड़ में जेब काटने से जो प्राप्ति होती उतने पर सतोष कर लेता। कभी प्रयत्न श्रसफल हो जाता है, कभी बहुत मामूली चीजे हाथ लगती है। पर श्रापकी सभा के दिन मुसे जितनी प्राप्ति हुई उतनी कभी नहीं हुई है; श्रतः मुसे श्रापके बारे में विशेष प्रेम श्रनुभव होता है! श्रापके कांग्रेस भवन की प्रायः सभी समाश्रो में मैं उपस्थित रहता था। श्राखिर भारतीय कांग्रेस के श्रिववेशन में भी मैंने प्रवेश प्राप्त कर लिया था।"

"यह सब तू करता कैसे है !"

"नियमपूर्वक खादी के कपड़े पहन कर भीड में जोर-जोर से 'इन्क़लाब जिन्दाबाद' श्रीर 'गाधीजी की जय' के नारे लगाते हुए, हाथ में दो-चार श्रखबार श्रीर दो-चार पुस्तक लेकर घुस जाने का हमारा तरीका है। सफ़ाईदार उर्दू बोलकर मैंने काप्रेस की सभा में भी प्रवेश प्राप्त िया। श्रापके स्वयसेवकों से ऐसा प्रतीत हुश्रा कि यह कोई उत्तर हिन्दुस्तानी कार्यकर्ता है। श्रापके वैयक्तिक सत्याग्रह के श्रादोलन के वक्त की सभाश्रो में उपरिथत रहकर थोडा-बहुत मैंने हासिल किया। श्रापके उस समय के सत्याग्रह की सभा में श्रद्धाईस सौ स्पयों के नोट मेरे हाथ लगे श्रीर यह सब श्रापके व्याख्यान के ही बदौलत हुश्रा, इसीलिए मुफ्ते श्रापके प्रति विशेष प्रेम ऋनुभव होता है।"

मुनीर के इस कथन को मुनकर मैं किस तरह चारो शाने चित हो गया यह जब मैंने अपणा को बताया, तब अपणा ने कहा, "इसमे आपको उस अकेले मुनीर के बारे में क्यों खास बात मालूम पड़ती है ? मुनीर ने इतना तो ईमानदारी से बतला दिया कि उसने कांग्रेस की सभाओं से फायदा उठाया है। पर यदि आप अपनी कांग्रेस में जरा अधिक पता चलाने की कोशिश करें तो सैंकड़ों की तादाद में 'मुनीर' भरे पड़े मिलेंगे। खादी टोपी पहनने वाले जुएबाजों को कांग्रेस ने निर्वाचन जीतने के लिए अपने नजदीक नहीं किया ! राजनीति में जैसा ममय आये वैसे मतों की लीला करने वाले कुष्ण कन्हैया तुम लोगों में नहीं है क्या ! दुर्भिन्न का फायदा उठा कर जनता को चूसने के लिए काला बाजार करके सम्पत्ति उपस्थित करने वाले खादी टोपी वाले आज कांग्रेस के भीतर है या नहीं ?"

''पर श्रयणा, तेरे कहने का क्या यह ऋर्थ है कि इस प्रकार की वृत्ति जैसी कांग्रेसजनों में है वैसी ऋन्य पार्टी वालों में नहीं है !'

"सर्वत्र है। हिन्दुत्व के प्रति श्रास्था प्रदर्शित करने वाले सस्थानिक (देशी नरेश) है ही न ? गरीवो की गर्दन मरोडने वाले, बड़े-बड़े देवालय बाधकर धर्म-मार्तड नाम से श्रपनी ख्याति करवाते ही है न ? श्रीर साहित्य के त्रेत्र मे ही क्या है ? श्रीमान् लोगो की स्तुति करके श्रपनी प्रतिमा को बेचने वाले कितने ही साहित्य मौजूद है। स्वार्थ के लिए कला (सगीत) का विकय करने वाले कितने ही कलावन्त (संगीतज्ञ) है। कहने का तात्पर्य यह है कि, श्रेपने मीतरी गुणो के बल पर सत्कार प्राप्त करने वालो की संख्या बहुत थोडी है श्रोर परिस्थिति का फायदा उठाकर श्रेष्ठत्व हासिल करने वालो की संख्या श्रधिक है। चोरी करके प्राप्त किये गये धन मे श्रीर गुणा न रहते हुए प्राप्त किये गये सम्मान मे श्रन्तर ही

क्या है १ दोना त्रोर ऋहिंसा हो से काम होता है। ऐसी हालत मे वेचार अर्कले मुनीर का नाम बदनाम करना ठीक नहीं। उसने ईमानदारी से सत्य सत्य कह कर थोड़ो कृतज्ञता तो व्यक्त की, अन्यत्र तो उतना भी नहीं नजर आता। सम्मान किंवा प्रतिष्ठा हमें योग्य रीति से मिली है, किवा हम उसके लिए पात्र हैं, ऐसा विचार कितने ही लोग करते हैं १ नेहरू जाकेट पहनते ही हरेक अपने को नेहरू ही समभने लग जाता है; भगवी टोपी पहनते ही सावरकरी गाली-गलोच मुँह पर चढ़ जाती है, हाथ में 'लोक युद्ध' पकड़ कर हर कोई अपने को स्टालिन समभने लग जाता है, और गाधी का अनुकरण करके कितने ही गाधी मक्तों के दिमाग आसमान पर चढ़ने लग जाते है। अ।ज के समाज में गुणों के मूल्य-मापन के लिए कोई उपयुक्त साधन नहीं है। सम्पत्ति को गुणों का नपैना बनाया हा नहीं जा सनता। लोकप्रियता भी कोई अच्छा नपैना नहीं है। यही कारण है कि आज की परिस्थित में कोई गदहा गोपाल बन जाय तो उसको खोज निकालना बड़ा कठिन हो जाता है।"

श्रय्णा के इस वक्तृत्व को सुन कर मै एकदम चित्त होगया ! योग्यता के श्रनुसार सम्मान का सिद्धान्त बड़ा श्रच्छा है; पर समाज मे उसे प्रस्थापित करना कितना मुश्किल है। श्रपनी योग्यता की तुलना मे काई चोज ज्यादा मिल जाय तो क्या उसे चोरी कहा जाय! तब तो बड़ी मुसीबत उठ खड़ी हो जायगी! सभी 'मुनीर' हो जायेगे। प्रयत्न श्रौर फल के बीच सदैव समानुपात रहता हो ऐसा थोड़े ही है! पुनश्च, सभी प्रयत्नो का सामाजिक मूल्य एक ही हिष्ट से श्राका जाय यह भी उचित नहीं, श्रौर यह समफते हए ही मैने श्रय्णा से कहा—

"सिकन्दर के सामने एक डकैत ने जो दावा किया वही तू भी कह रहा है। डकैत किन्ही एक-दो के घर चोरी करता है, एक-दो घर मे सेघ लगाता है, एक-दो का खून करता है, पर सिकन्दर प्रदेश के प्रदेश लूटता था, युढ़ में लाखों लोगों को यमलोंक पहुंचा देता था, इसी तुलना में डकैत ने कहा था कि सुफ में श्रीर सिकन्दर में कोई श्रान्तर नहीं है एक का न्यापार फुटकर तो दूसरे का थोक, इतना ही श्रान्तर है। यदि इसी दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो कांग्रेस की सभा में जेबे कतरने वाले सुनीर में श्रीर (उसी सभा में) बड़े-बड़े कार्यक्रमों की गर्प्णे हांकने वाले सुफमें तथा (मेरे जैसे) श्रीरों में क्या श्रान्तर रह जायगा ?"

"कुछ भी नहीं।"

''तब तो सिकन्दर बादशाह की ही नौबत आ गई, ऐसा समभाना होगा। सिकन्दर और डकैत! देश के लिए प्रतिज्ञा करके लडने वाले बीर और जेब कतरा मुनीर! सचमुच विचार करने योग्य वस्तु है।

क्लें यार लन्दन क्लें

🃆 क किव ने कहा है कि काल कभी ब्रात्यन्त वेग से चलता है तो कभी ऐसा प्रतीत होता है कि वह सर्वथा निःस्पंद अवस्था में है। कभी वह श्राटकता खटकता चलता है तो कभी वह मार्ग मे श्राने वाली बाधात्रों को इस तीव गित से पार करता हुत्रा चलता है कि देखने वाला दंग रह जाता है। वाग्दत्त वधूवर को विवाह तिथि तक का काल राह मे रक जाने वाला रुकावटे पैदा करने वाला, ऋडियल, परिस्थिति को न पहचानने वाला प्रतीत होता है। मृत्यु दड की सजा वाले कैदी को श्रम्तिम चार्य तक का काल तीव गति वाला प्रतीत होता है। राजनीतिक लोग अपनी सुविधा के अनुसार काल के वेग को निर्धारित करने का प्रयत्न करते है। उन को ऐसा प्रतीत होता है कि ऋखिल जगन्चक उनकी श्रायोजनाश्रों के श्रनुसार ही चला करता है। मनुष्य श्रनेक प्रकार के सकल्प किया करता है, पर काल सदा यही सिद्ध करके दिखाया करता है कि मनुष्यों के सारे प्रयत्न निर्मुल एवं तुद्र हैं। मानवीय कर्तु त्व को महत्व प्रदान करके भी किन्हीं दुवींघ घटनात्रों का ऋर्थ लगाने के लिए दैव नामक वस्तु को मानना पडता है। कम-से-कम स्रार्थ-संस्कृति मे दैव को काय का पांचवां कारण माना गया है। हम स्रपने भाग्य का स्वरूप कैसा भी क्यों न निर्माण कर रहे हो, उसका स्रान्तिम स्वरूप तो कोई श्रपौरूप शक्ति ही निर्धारित किया करती है।

ये एव एताइश स्त्रन्य स्त्रनेक प्रकार के विचार मेरे मस्तिष्क मे उस वक्त स्त्रा रहे थे, जब मैं विलिग्डन हवाई स्त्रड्डे के स्वागत-गृह मे खड़ा हुस्रा था। पृथ्वी की भाति गोलाकृतिवाले दालान मे स्त्रनेक स्त्री-पुरुष एकत्र थे। इस समुदाय मे सत्ता के सिहासन के चौथे खबे के प्रतिनिधि (पत्रकार) विशेष दौडधूप मे थे। गत चौबीस घटों मे हम किस तरह व्यस्त रहे, समाचार कैसे प्राप्त किये, कसा समाचार लिख भेजेंगे, यही उनकी बातचीत का विषय था। दो-चार स्त्रादमी इकट्ठे हुए कि "वार्ता वधू धनादिक" की चल पड़ी हैं। दो-चार पत्र पंडित एकत्र हुए कि समाचार किस प्रकार इस्तगत किया, िस प्रकार घड़ा, इन्हीं बातों की चर्चा होती हैं। इन पत्रपड़ितों मे विदेशी सवाददाता भी थे, पर उनका यह देशित्व स्त्रौर विदेशित्व केवल रग से ही पहचाना जा सकता था। कारण, वेशभूग से सभी विदेशी थे। किंबहुना देशों-भूवा मे भारतीय सवाददाता उतना ही दुर्लभ एव विस्मयकारक है जितना कि व्यापार मे कोई महाराष्ट्रीय।

उस समुदाय के लोगों को देखने के पश्चात यह देश गरीब है ऐसा किसी को अनुभव नहीं हो सकता था। उपस्थित स्त्री-समुदाय तो मानो विवाह समारम्भ के ठाठ में था। दिल्ली के राजकीय वर्तु ल में विचरण करने वाली स्त्रियों को देखकर कोई भी दर्श क यहीं कहेगा कि वेश-भूषा के बारे में तो ये सारे जगत् वा नेतृत्व अवश्य स्वीकार कर सकती हैं। एक दर्जन से ज्यादा ही केमरा न वहाँ मौजूद थे। कदाचित उनकी मौजूदगी के

कारण ही लोगों की वेश-भूषा में इतनी स्वच्छता दिखाई दे रही थी। उनमें कुछ-एक इसके लिये विशेष प्रयत्नशील दीख पडते थे, श्रौर जनान्तिकतया कहता हूं, मैंने भी थोडा-सा प्रयत्न किया। पर वगैर इस्त्री का कोट सिर्फ हाथ फेरने से तो इस्त्री नहीं हो जाता न १ श्रथच, मोटा-फोटा खादी का गिरधान वस्त्र सवारने-ववारने से महीन तो नहीं हो सकता न १ चन्द्रोदय की प्रतीच्चा करते समय जैसे तारिकाएं दिखाई देती है, तद्वत् नारी-समुदाय दिखाई दे रहा था। इतने में पुच्छल नच्चत्र के सहश विचित्रता में ही श्रपने स्वभाव की सुसंगति दिखलाने वाला वेश किये एक व्यक्ति ने उस दालान में प्रवेश किया। वह व्यक्ति ये राष्ट्रपति श्राचार्य कृपलानी। मेरे मन को थोडी तसल्ली हुई। श्राखिर एक व्यक्ति तो श्रपने-जैसा नज़र श्राया।

थोडी ही देर मे राजेन्द्र बाबू भी आ गये। हम तीनो बैच पर बैठ कर नेहरूजी के आने की राह देखते रहे। घर से बाहर निकलने समय सारा घर छानकर किसी समय कात कर बनाया हुआ एक सूती हार पडितजी को पहनाने के इरादे से मै अपने साथ ले आया था। उस पर नजर गडाकर कुपलानीजी ने मुफसे कहा, "पडितजी इस हार पर प्रसन्न तो होगे नहीं, तब आप यह मुफ्तीको क्यों नहीं पहना देते ?"

मैने कहा, "लन्दन की यात्रा करने वाले के लिए है यह । इसमें ऋपनी गर्दन उलमानी हो तो इतना दिव्य (ऋग्नि-परीचा) कराना पडेगा।"

इतने में जनममुदाय के बीच गड़बड मच गई स्त्रोर मैं उठकर प्रवेश-द्वार पर पहुचा | पंडितजी मोटर में से बाहर स्त्राये | उनका स्वागत करके सूती हार तो मैंने पंडितजी के गले में पहना ही दिया | स्त्रनेक पुरुषों ने उनका स्वागत किया | स्त्रनेक व्यक्ति फूलों के हार लाये हुए थे | उनको पंडितजी ने स्वीकार किया। पर गले मे उन्होंने सिर्फ स्ती हार ही रखा। उस हार में अपनी अ्रङ्गुली उलमाये हुए वह बोल रहे थे और विचार-मग्न भी दिखाई देते थे। उनके मन में उस समय कौन-से विचार चल रहे होगे, इस बात का मैं विचार कर रहा था। एकाएक लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व की एक घटना मेरी आखो के सामने आकर खडी होगई।

१६३१ का अगस्त का महीना होगा वह । गाधीजी ''राजपूताना'' नामक जहाज मे बैठकर गोलमेज-परिषद में भाग लेने के लिए लन्दन जा रहे थे। उस समय भी बम्बई बन्दरगाह में खडे हुए जहाज पर गाधीजी को विदा देने के लिए एकत्र हुए लोगों में विद्यमान रहने का सौभाग्य मुभे प्राप्त हुन्ना था। भारत के एकमात्र प्रतिनिधि बनकर वह जा रहे थे। १६३१ के युद्ध के अनन्तर प्रभूयमान आशाओं और आकान्ताओं का बोम त्रपने ऊपर लिए हुए वे प्रयागा कर रहे थे। सत्य के त्रातिरिक्त उनका सहकारी श्रीर कौन था ? सौजन्य के श्रितिरिक्त उनके पास कौन-सा शस्त्र था १ दृढ़ विश्वास के ऋतिरिक्त उनका मार्गदर्शक कौन था ? वह कुछ चिन्तित-से दिखाई देते थे। उनके प्रस्थान करने से पूर्व गुर्जर कवि मेधाजी का एक काव्य उन्हें भेट दिया गया था। यह प्याला कड स्त्रा है परन्तु उसे ऋाप ही पी सकते है, यह उसका ऋाशय था। उनके माथ उनके अनेक सहकारी जाने के लिए उत्सक थे; पर किसी को नहीं लिया गया । भारतवर्ष का भाग्य भारत ही मे निर्मित होना चाहिए । ऐसा कहते हुए वे खाना हा रहे थे। उन दिनों भी इतिहास बहुत ही वेग से किया-शील हा रहा था। पर उसका चेत्र उन दिनो इंग्लैंड था। एक मित्रमंडल की नीव हिल चुकी थी। उसकी जगह दूसरा मंत्रिमण्डल आ रहा था। निर्वाचन का त्राक्रोश त्राकर्षित हा रहा था। सबको ऐसा ही लगता था कि बस, स्वराज्य तो त्रान ही पहुँचा, कुछ महीनों की ही कसर है।

रात्रि शीघ ही समात है। जायगी त्रोर शीघ ही प्रमात का उदय होगा। द्विरेफ के इस प्रकार त्राशा बाधकर बैठने पर जिस प्रकार गजराज ने त्राकर कमलवन वो उद्ध्वस्त कर दिया, वैसा ही कुछ प्रकार इस देश में मी हुत्रा। प्रचण्ड प्रमजन की भांति नादिरशाही शासन ने भारत को ध्वस्त कर दिया। समर तेत्र में त्राजेय साबित होने वाले महात्मा ब्रिटिश लोकसभा की कुटिल नीति के समन्त सर्वथा निष्प्रभ रह गये। थोडी ही देर में स्वराज्य का सौदा तय है। जाने की त्राशा लगाये हुए राष्ट्र की दिंडमूढ़ की सी त्रावस्था है। गई।

कदाचित्, कदाचित् ही कह रहा हूँ, नेहरूजी के मन मे भी गत इतिहास की स्मृतिया जागरित हो उठी हो १ त्राज वह भी भारत के एकमात्र प्रतिनिधि बन कर जा रहे थे। सहकारियों को त्रपने साथ लेकर जाने की उनकी इच्छा तो थी, पर सहकारी कोई जाने को तैयार नहीं था। सलाह-कारों की त्रावश्यकता थी, पर सलाहकार कोई बनने के लिए तैयार नहीं था। भारत के भाग्य को भारत मे ही तैयार होना है, यह निश्चित होजाने पर भी वह भारत से वाहर जा रहे थे। स्वातन्त्र्य की कीमत त्राश्रु, त्रौर रक्त के रूप मे भारत पर्याप्त स्त्रदा कर चुका है, इसका परिज्ञान उनकी मुख-मुद्रा पर से स्वष्ट व्यक्त हो रहा था।

भ्रू णहत्या करने वाली दाई

शौर्य, उदारता, बुद्धिमत्ता श्रादि गुणो से ही नेतृत्व की पूर्णता नहीं होती, यह इस काल का कटु श्रनुभव है। गत कुछ वर्षों मे, विशेषतः गत कुछ महीनो मे, तत्रापि गत कुछ दिनो मे, राजकीय दोत्रो मे जो घटनाएं घटित हुई है, उन्हे देखने पर कोई भी ख़म ठोक कर नहीं कह सकता कि मै ही मैदान मार लूंगा। कोई व्यक्ति कही पर बैठा हुन्ना किसी प्रकार का कूट-प्रपच कर रहा है श्रीर मुह तक श्राया हुन्ना कौर

होता है ?"

छींन लेने के प्रयत्न में लगा हुआ है, इस प्रकार का सदेह आज वातावरण में सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। भाषा अर्थ के लिए नहीं प्रत्युत स्वार्थ के लिए हैं, ऐसा ही अनुभव हो रहा है। जन्म लेने वाले वालक को दाई ही गला दबाकर मार तो नहीं डालेगी, इस प्रकार की मीति आज बहुतों के मन में उत्पन्न हुई हुई है। जमीन सममकर पैर रखने जाय और पर जाकर पानी के प्रवाह में गिर पड़ें, इस प्रकार का समोह उत्पन्न हो गया है और ऐसी इस विचित्र परिस्थिति में पिडतजी का बाहर जाना कहा तक योग्य है ऐसा प्रश्न अनेक के मिस्तिष्क में आता। ब्रिटिश राजनीतिजों ने दोनों हाथों से दोनों पत्तों (कांग्रेस और लीग) को आश्वासन दे रखा था, व्यक्त रूप में तो दे ही रखा था, तब अव्यक्त रूप में न दिया हो यह कैसे कहा जा सकता था? अर्थहिष्ट वायसराय (वेवल) अदूरहिष्ट तो थे नहीं, हां, दीर्घसूत्री अवश्य थे।

उत्सवमूर्ति तथा अन्तमूर्ति

इतने में 'खामोश खामोरा' की मेव-गजना हुई । विमानगृह के अप्रिकारी ने सूचित करते हुए कहा कि यात्रियों के अप्रितिरिक्त अन्य कोई भी लोहे की सीखि चयों से आगों न जाय । पिंडतजी ने भीड में से निन्तल कर विमान की दिशा में जाना आरम्भ किया । उन्हीं के नभोवाणी द्वारा प्रसूत किये शब्दों में कहा जाय तो दैव उन्हें सकेत कर रहा था । वह यदि अप्रकेले का ही दैव लेकर जा रहे होते तो उसमें कोई बड़ी बात नहीं थी, पर वह तो अपने साथ चालीस करोड़ जनता के दैव को लेकर जा रहे थे। समीपवर्ती एक पत्रपंडित ने मुक्तसे पूछा, ''आपको क्या प्रतीत

मैने कहा, ''श्रब प्रतीति का प्रश्न ही नहीं रह गया है। श्रव तो देखने का प्रश्न रह गया है। हमारा उत्साह श्रीर हमारी उतावली विलायत जा रही है स्त्रीर हमारा निश्चय एव निग्रह यही रह रहा है यह हमारे लिये सोभाग्य की बात है।''

उसने पूछा, ''इसका ऋर्थं'' ?

मैने कहा, सरदार पटेल देवालय में संस्थापित श्रचलमूर्ति है श्रौर पिंडतजी उत्सवमूर्ति । सरदार निग्रह है । 'ना' कब कहना चाहिए यह केवल उन्हीं को श्रवगत है । एतावता नेहरूजी के जाने में खतरा भले ही हो पर भय की कोई बात नहीं।"

एक मिनिट की 'गुपतगू'

गत छः महीनो की राजनीतिक प्रगति का जिसने अवलोकन किया है, वह यह अच्छी तरह जान गया होगा कि राजनीति मे हढिनिश्चयी एव कठोर व्यक्ति की कितनी अधिक आवश्यकता है। जो स्वय किसी के पास नहीं जाता, लोग उसके पास दोड-दोड जाते हैं। जो किसी से बोलने के लिए तैयार नहीं, उससे लोग बातचीत करने के लिए तैयार रहते हैं। जो यह स्वय नहीं बतलाता कि उसे किस वस्तु की आवश्यकता है, लोग उसी से जाकर पूछते हैं कि आप क्या लीजिएगा हम सब बातों का अर्थ हम कब समभेंगे हम अपनी स्वतन्त्र गति से क्यो न चले कि जब हमारी अपनी शिक्त आज हमारे लिए आधार बनी हुई है, तब हम परमुखापेची क्यो रहे श्रापनी राजनीति के लिए जब हम स्वयंमेव सर्वसमर्थ है, ऐसी स्थित हम अधीर वृत्ति होकर अविवेक पूर्वक अपना सर्वनाश क्यो करले श अब हमारी स्वतन्त्रता को कोई हमसे दूर नहीं रख सकता। हम यदि चलने लगेंगे तो वे लोग जो स्तब्ध होकर हमारे पिछे खडे है, अपने आप ही गतिशील होकर हमारे मार्ग का अनुसरण करने लगा जायेंगे, यदि हम यह

समभने लग जाय कि जो हमारे मार्ग मे क्कावटे पैदा करना चाहते है, उनके ऐसा करने से हमारा कुछ बिगड़ने बाला नहीं है, तो वे अपने आप ही सरल मार्ग पर आ जायेंगे। पहले भ्रमण्मार्ग का मानचित्र रेखांकित करके नदी के प्रवाह ने कभी अपना प्रगमन आरम्भ किया है ! नदी तो अपना मार्ग, अपना विस्तार एव अपनी व्याप्ति मार्गक्रमण् करते-करते ही निर्धारित किया करती है। हवाई सेना के साथ वहा उपस्थित सारा जनसमुदाय जयहिद की गर्जना करने लगा। पिंडतजी ने राष्ट्रपति तथा राजेंद्र बाबू के साथ एक मिनिट गुफ्तगू की; हमारे साथ इस्तान्दोलन किया तथा सरदार बलदेविसह का हाथ अपने हाथ में लेकर वह विमान की ओर गये।

ं दो पखे

विमान का यन्त्र - गर्जन ग्रारम्भ हुन्ना, पर एजिन का एक पंखा चल के ही न दे ! किसी ने कहा, जब तक दोनो पखे चलने न लग जाय यह उड़ेगा कैसे ? दूसरा कहने लगा, एक पंखा जोर से चालू हो गया तो दूसरा अपने त्राप ही चालू हो जायगा श्रीर मानो किन्ही घटमान एव घटिष्यमाण घटनात्रों के प्रतीकस्वरूप एक पखा थोडी टैर तक जोर से चलता रहा तत्पश्चात् दूसरा भी चल्लू हो गया श्रीर एक निमेष मे विमान भूमि से श्रालग हो गया। दो एक मिनटों में श्रांखों से श्रोभल भी हो गया।

मै सोचने लगा काल किस वेग से ऋागे जायगा, यह नहीं कहा जा सकता। वह हमें पीछे की ऋोर भी लें जा सकता है। कारण, लंदन सटा से ही भारत की ऋाशाऋों की श्मशान-भूमि रही है। जिसकी इच्छा नहीं की वह प्राप्त हो ऋौर ऋपेचा नहीं की वह ऋनुभव में ऋाये, यही ऋाज तक का इतिहास रहा है। एकत्र की हुई शक्ति वहा विखर जाती है और निश्चय घरा-का-घरा रह जाता है। यह होने पर भी विश्व के अनेक-अनेक राजनीतिशों को लंदन का मोह हुआ करता है। अध्यन्न विल्सन् की करुणावस्था लदन ही में हुई। लीग और कांग्रेस वाले अपना सारा घोना लदन के ही घोबीघाट पर ले जाना चाहते हो तो वह इस देश के लिए एक महान् दुदैंव की वस्तु होगी। आज देश में प्राण्हानि हो रही है उसी के साथ परदेश में मानहानि होने वाली हो तो तो इस देश के दुदैंव का अन्त नही, यही कहना चाहिए।

मै अपनी इस विचार तन्द्रा में लीन था कि इसी बीच मैने किसी मजदूर को "चलो यार लंदन में" यह गीत गाते हुए सुना । उसे कदाचित इस बात की कल्पना भी नहीं थी कि आज हो क्या रहा है १ पर वह गीत इस बात का प्रतीक था कि सामान्य मनुष्य को किस प्रकार की प्रतीति होती है । मैने भी मोटर में बैठते समय आग्ने स्नेहियों से कहा, "चलो यार लंदन में"। अबोध उत्साह भी जीवन की एक बडी भारी शक्ति है, क्यों सत्य है न ?

मोरीसम मैंया

सिम्बली भवन मे बैठा हुआ मैं पूना से स्राये समाचार-पत्र पढ़ रहा था। एक खबर से मालूम हुस्रा कि हमारे गोटी गम भैया का एकाएक देहान्त हो गया है। मार्च के पहले अठवारे मे चुनाव सम्बन्धी त्रानी दौरा करता हुन्ना जब मै कुछ घटो के लिए पूना रुका था तभी गोटीराम भैया से मुलाकात हुई थी। चुनाव की बात ऋति ही जब गोटीराम भैया ने ऋपने एक-चौथाई सदी से परिचित स्वर मे बतलाया कि काम 'कम्पलेट' हो गया है तो मुभ्ते बहुत ही ज्ञानन्द हुन्ना मै जानता था कि कांग्रेसी उम्मीदवारो के सम्बन्ध मे पूना मे अन्दर ही अन्दर कुछ अप्रशस्त एवं अप्रामाणिक प्रचार चल रहा है। गलतफहमी की ऋाग दावानल वी भाँति प्रज्वलित हो कर स्रभी तक ब्रुफ़ने मे नही स्राई थी। कार्यकर्त्ता तथा कमेटिया उदासीनता तथा उद्देग की छ,या मे कुछ कुम्हलाई हुई सी दिखलाई दे रही थी। नियामक मराडल काफी जोश के साथ काम करता हुआ दिखाई देता था। तथापि ऐसा भास होता था कि कही पर िसी का मन त्राशंकित-सा है। इसी कारण जब भैया के ज्ञाश्वासन से मुक्ते यह मालूम पड़ा कि मंडई विद्यापीठ त्रपना बाजू सभाले हुए है तो मुक्ते त्रानन्द होना स्वाभाविक था। गत चौथाई सदी के अपने सार्वजनिक जीवन में मैने गोटीराम मैया को कभी कम महत्व का व्यक्ति नही माना । उनसे मेरा परिचय सर्वप्रथम सन् १६२० में हुआ। असहयोग के उस प्रभात काल में भैया का वह भन्य शरीर, विस्तृत भालप्रदेश, कदाचित इसी कारण नाराज होकर नीचे दबी हुई नाक, पहलवानी पेशे का रग-ढग तथा तडके-तडके धूप चढ़ आने तक साइकिल पर या पैदल हाथ में तिरगा भड़ा लिए 'देशाशी वरावा लागला, जन हो खादी वापरा" (दंश मे प्रचएड दावाग्नि प्रज्वलित है, धारण करो हे जन खादी परिधान को) की निरन्तर चाल रहने वाली घोपणा - ये सब पूना के तत्कालीन इतिहास मे स्त्रमर रहने वाली बाते थी। श्रीर हम जैसे लोगों के लिए जिन्होंने राजनीति के कंत्र में नया-नया ही प्रवेश किया था, मैया एक गर्व की वस्तु हो गये थे। पूना की मडई (सन्जीमडी) क्या थी एक शक्ति का केन्द्र थी, गाधी-भक्ति का तीर्थ थी। निःस्वार्थ जन-सेवा का निवास-स्थान थी । उस समय के लोगो मे ब्राहमद भाई तबोली प्रमुख थे। ऋहमद भाई एक बिनबोल मगर बिनमोल कार्य-कर्ता थे। मडई की वह मंगलमूर्ती थे। े दोनो ही को उनके हाथ थे। पिकेटिंग के ऋभियोग में किस तरह उन्हें सजा हई: उसके बाद मैने और भैया ने जेल मे जाकर म्युनिसिपल चुनाव के लिए किस तरह उनकी सम्मति प्राप्त की, कैंसे उनका चुनाव हुन्ना, कैसी-कैसी महई मे सभाये हुई: मेरे यह कहने पर कि रायबहादुर लल्लूभाई काग्रेस के उम्मीदवार नहीं है किस तरह सभा में हंगामा मच गया, किस प्रकार मेरी रद्धा के लिए भैया ने मेरे चारो तरफ घेरा डाला, किस प्रकार परिवर्तन-वादियों त्र्योर स्वपरिवर्तनवादियों में तीब्र मतभेद होते हुए भी मुक्त में त्रीर मंड़ईवालों में श्रखंड श्रोर श्रवाधित मैत्री बनी रही ये सब बाते श्राज मेरी स्मृति में श्रायन्त तीब रूप से श्रा रही हैं।

* * *

तीस श्रीर बत्तीस साल के श्रान्दोलन मे भैया ने कठोर कारावास सहन किया। सरकार की दृष्टि मे वह एक सामान्य मनुष्य समभे गये, इसीलिए दूसरा दर्जा दिया गया श्रीर हमे दूसरा। स्वमावतः श्रानेक बार एक ही जेल मे रहते हुए भी हम एक-दूसर से मिल नहीं पाये श्रीर न बातचीत कर पाये। पर बयालिस के श्रान्दोलन मे यह सब बदल गया। नो श्रास्त के सुप्रभात मे बम्बई के सरदारगृह पर घेरा डालने वाले पुलिस वालों ने मेरा तथा जेंधे का पीछा करके हमे शिवाजीनगर पर ही पकड़ लिया तथा वहा से हमे सीधे यरबदा पहुचा दिया। वहा दरयाजे पर सभाजी जेलर श्रीर मैया खंडे हुए थे। मैया ने बताया कि उन्हे श्राभी-श्राभी पकड़ कर पहुँचाथा गया है। उस दिन से लेकर मई १६४४ तक श्रार्थात् भैया की रिहाई होने तक भैया मेरे ही साथ रहे। यरबदा इडस्ट्रियल स्कूल, साबरमित श्रीर नासिक इन सभी जेलों मे वह मेरे ही साथ थे। मैने भी जोडतोड़ लगाकर भैया को ''ए'' क्लास डिटेन्यू के रूप मे रखने की व्यवस्था करवा दी थी।

जेल मे भैया का कमरा एक मदिर था। सामने छोटा-सा बगीचा, अन्दर अनेक देवताओं के चित्र और भिक्तिविषयक प्रन्थ। जिस प्रकार शरीर मे आत्मा निद्राधीन रहती है उसी प्रकार उन भिक्तिविपयक प्रन्थों के पृष्ठों मे "शाभवी" भरी हुई थी। हर रोज रात को भैया अपनी खजड़ी बजाकर भिक्त-मार्ग की पुकार लगाते और ज्ञानी तथा आत्रां दोनों को अपने पास बुलाया करते थे। सहजानन्दस्वामी जैसे ज्ञान-मार्गा; साने गुरुजी जैसे मिक्तमार्गा; शीघ्र रिहाई की इच्छा से भजन मे भाग लेने वाले अनेक

श्रार्त; मेरे जैसे भजन-पूजा श्रादि वस्तुश्रो का उपहास करने वाले उपहासक, सभी भैया के कमरे में एकत्र हुश्रा करते थे। ब्रह्मानन्द के पद, कबीर के दोहे, तुकाराम के श्रमंग श्रादि तो भैया सुनाया ही करते थे, इनके श्रातिरेक वह स्वकृत काव्य का भी रसास्वादन कराते थे। इडस्ट्रियल स्कूल के उपनिवेश में हमारे साथ कुछ साम्यवादो श्रीर समाजवादी युवक भी रहा करते थे। उन लोगो से मैंने कहा कि भैया की शक्ल कार्ल मार्क्स की शक्ल से मिलती है। इस साम्य के कारण ही उन नास्तिक लोगो में से भी कुछ लोग मैया की भजन मडली में शामिल होने लगे। मैया के भजन मे रौनक लाने के लिये तथा भिक्त के प्रादुर्भाव के लिए कैलाशपित के श्रत्यन्त प्रिय दो द्रव्यो की श्रावश्यकता रहती थी श्रीर उन वस्तुश्रो का श्रमाव न रहे इस बात का सुभे हर समय ध्यान रखना पहना था।

पूना से जिस समय हम पन्द्रह श्रादिमियों को साबरमती भेजा गया था उस समय की घटना सुभे श्राज याद श्राती है। वहां जाने पर जब भैया को मालूम हुश्रा कि सामान की तलाशी लिये बिना हमें श्रन्दर नहीं जाने दिया जायगा तब उन्होंने मेरी शरण ली, क्योंकि उनके पास ये चीजे भरपूर थीं। जेल के श्रन्दर के भाग मे दादा साहेब मावलकर हम लोगों के स्वागत के लिये चाय की तैयारी किये बैठे हुए थे। समस्या विकट थी, तथापि बडी युक्ति से मै पहरेदार की नजर बचाकर भैया की यं सारी चीजे फाटक की सीमा से उनके निवास-स्थान तक सुरिच्त ले गया। वहा भैया ने श्रपने गाने तथा भजन से साबरमती जेल के कैदियों के मन इस प्रकार माहित कर लिये कि भैया के लिए श्रावश्यक पुरस्कार की बिलकुल कमी नही पडी। साबरमती से नासिक जेल के लिए प्रस्थान करने से पूर्व बिदाई देते समय लोगों ने श्रपने भागणों मे भैया की जो प्रशसा की उसे सुनकर हम मे से कुळु को तो भैया की

लोकप्रियता पर कुछ ईर्ष्या ही हुई।

* * *

नासिक की जेल वह भूमि है जिसे भगवान राम ने ऋपने पदक्षेप से पवित्र किया था । कौन कह सकता है कि उस स्थान पर विद्यमान वृत्ती की पक्तियों मे बैठकर अथवा गोदावरी के परिसर मे भटकते हुए प्रभ रामचन्द्र ने मानव-शत्रु दशानन के वध का निश्चय किया हो। मेरे कमरे के एक पार्श्व में जेघे तथा दूसरे पार्श्व में भैया रहा करते थे। बहुत सबेरे उठकर मै चार-पांच घंटे लेखन कार्य किया करता था। उस काम मे किसी प्रकार की बाधा न त्राये, इस बात का ध्यान ये दोनों सन्मित्र रखा करते थे । महीने पर महीने जेल मे ही व्यतीत होते जा रहे थे । यह देखकर नये तथा पुराने कार्यकर्त्ता थोडे निराश ख्रौर ख्रन्यमनस्क से हो गये थे। श्रारम्भ काल का उत्साह समाप्त होता जा रहा था। बहुतो की श्रध्ययन-शीलता चीरा होती जा रही थी। खिलाड़ी वृत्ति चिडचिड़ी वृत्ति को जगह देने लगी थी। मुक्तमनस्कता उन्मनस्कता के रूप में परिवर्तित हो चली थी। यदि थोडे से लोगों को अपवाद मानें तो प्राय: सभी व्यक्तियों की मन प्रवृत्ति उदासीन होती जा रही थी। सहजानन्द स्वामी के चतुः सूत्री पर होने वाले विवेचन मे रस लेने वाला श्रोताबृन्द कम होता चला जा रहा था। श्रनेक विषयो पर व्याख्यान कराने के विचार से प्रारम्भ की गई व्याख्यानमाला नाममात्र के लिए ही त्र्यवशिष्ट रह गई थी। परन्त हमारे भैया का भजन-क्लब नन्दादीप की भांति ऋखड रूप से लौ उठाता रहा. गंगा के प्रवाह की भाति वर्द्धिष्णा होता रहा। उस मंडली में मैं भी भाग लिया करता था।

१६४४ के मार्च का महीना था। महाशिवरात्रि थी। उस दिन मैंने 'राज्य शास्त्र विचार' नामक प्रथ के लेखन को समाप्त करने का निश्चय कर

रखा था। हमारे मित्रों का यह निश्चय हुन्ना कि इस श्रवसर को एक समारम्भ के रूप में सम्पन्न किया जाये। यह निश्चय हुन्ना कि शिवरात्रि के लिए श्रनुरूप प्रसाद शाभवी का सब को पान कराया जाय। इस न्नायोजन के लिए श्रावश्यक सामग्री जुगने का भार हमार सकलगुण्यसम्पन्न पाहुरंग (उत्पात) पर डाला गया। पाहुरग एक प्रकार के हमारे जेल जीवन के डाकिया थे। रिहाई की खबर वही लाया करते थे। किसी को किसी वस्तु की श्रावश्यकता होती तो उसको लाकर देने का चातुर्य उन्हीं मे था। डेढ्सो श्रादिमियों को 'राज्य शास्त्र विचार' ग्रथ की समाप्ति के उपलब्ध में भरपूर शाभवी पिलाने का श्रेम भैया ने हासिल किया श्रोर संयोग की बात यह है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन के समय श्रार्थात् गत गांधी जयन्ती के मौके पर भैया ने ही श्रगुत्रापन स्वीकार करके श्रपने खर्च से पेड़े बायकर मिठास पैदा की।

* * *

श्रीर श्राज यह सहुदय सहकारी विलुप्त हो गया है। व्यास की तरह खादी को कठरव से कामधेनु बताने वाले एक निस्सीम खादीभक्त को श्राज मृत्यु ने हम से छीन लिया है। फैजपुर काग्रेस के समय पूना से फजपुर तक पैदल यात्रा करने वाला यात्री श्राज श्रपनी जीवन-यात्रा समाप्त किये बैठा है। ग्रानेक वार श्रानेक वर्षा तक काराग्रह में श्रपना जीवन व्यतीत करने वाले एक फीलादी राष्ट्रभक्त को मृत्यु ने मृदु कर लिया है। मेरे मंडई विद्यापीठ का श्राद्य स्नातक श्राज "सः वित्रा या विमुक्तये" इस महान् तत्व का श्राचरण करते हुए दिवगत हो गया है। भजन के वक्त भैया के चिर परिचित श्रावाज मे निकलने वाले शब्द श्राज भी मेरे कानो मे गूँज रहे है—"इस गाडी से जाने वाले, चलो तुम्हारी बारी है।"

श्रीर श्रपना समय श्राते ही भैया चले गये। एक सन्मित्र से. एक श्रनुयायी से, एक नागरिक से, श्रन्धेरी रात मे श्रावाज लगाते ही प्रत्यत्तर देकर तैयार रहने वाले अपने शरीर एवं कीर्ति के संरक्षक से आज मैं हाथ घो बैठा हूँ । भैया, समस्त महाराष्ट्र की स्त्रोर से तुम्हे मेरेशतशः प्रणाम ।

अथ विमान मार्गेण

क समय था जब मानव-जाति श्रमन्त श्राकाश मे उडान भरने वाले पिच्चियों को देखकर उनके सौभाग्य के प्रति ईर्ध्या किया करती थी. पर त्राज वैसा करने की त्रावश्यकता नहीं रह गई है। इसी प्रकार किसी भी नई योजना को ऋव्यवहार्य सिद्ध करने के लिए यह कहना भी गलत होगा कि वह 'कल्पना के त्राकाश मे ली गई एक उडानभर' है। नये-नये शास्त्रो, विद्यात्रो त्रीर विज्ञानो का इतना कुछ त्राविष्कार हो गया है, नई-नई साधन-सामग्रियों के निर्माण में मानव-जाति ने इतनी कुछ प्रगति कर ली है कि अब बहुत-से पुराने मुहाबरो और कहावतो को बदल डालना पड़ेगा, जीवन सम्बन्धी ऋनेक ऋतुभन्नों को निरर्थक कहकर छोडना पड़ेगा तथा जीवन सम्बन्धी अनेक दृष्टिकोणों में पर्याप्त सुधार करना आवश्यक हो जायगा । इस प्रकार के दार्श निकस्वरूप के विचार मेरे मस्तिष्क में क्यो त्र्या रहे थे, इसकी एक वजह थी। मैं स्वय इस समय जमीन पर नहीं था. जमीन से हजारो फ़ट की ऊचाई पर दौड लगाने वाले टाटा कम्पनी के एक हवाई जहाज़ मे बैठा हस्रा था।

त्रपने कालेज-जीवन में कालिदास द्वारा रघुवंश में वर्णित राम श्रीर सीता के पुष्पक विमान में बैठकर लंका से लेकर श्रयो॰या तक किये गये प्रवास का वृत्तात पढ़ रखा था । इसी प्रकार विरही यत्त्व ने मेघ को श्रपना दृत बनाकर श्राकाश के श्रनन्त विस्तीर्ण प्रदेश में से होकर गुजरते समय कही राह न भटक जाये इसलिए जो मार्ग के निश्चित सकेत बताये थे वे इस समय भी, जबिक मेरी रिसकता की उम्र समाप्त होने को श्रा रही है, स्मृति-पटल से पूर्णतया पुछ नहीं गये थे। यह ठीक है कि मैं इस समय राम के समान किसी जोड़े के रूप में यात्रा नहीं कर रहा था, श्रीर न मेरे पास किसी विरहपीडित व्यक्ति के दूत का ही काम था। इस दीन दुर्गत देश के करोड़ो रुपयों से संबन्धित विषयों के वारे में निर्ण्य करने के लिए नियुक्त विधान परिषद् की समिति के काम पर मैं जा रहा था श्रीर एक प्रसंग श्रा पड़ा था इसलिए श्राकाशमाग से जाना मेरे लिए श्रावश्यक हो गया था।

कांटे और--

टाटा कम्पनी के टिकट घर में "पंच पच उषः काले" जब मैं उपिस्तित हुआ, उस वक्त वहा का टाटबाट देख कर मेरी अवस्था एक नन्हें मुन्ने की-सी होगई हो तो इसमें अचरज की कोई बात नहीं। दीवार पर भारतवर्ष का एक सचित्र नक्शा बना हुआ था। भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न वस्तुओं के चित्र दिखाये गये थे। बम्बई में भारत की टकसाल है, अतः वहा ऐसा चित्र बनाया था कि पैसे बन कर बाहर आ रहे है। दिल्ली के चित्र में एक सरकारी अफसर दिखलाया था जिसकी मेज पर फाइलों का बडा भारी ढेर है और एक ओर लाल फीतों का गुच्छा पडा हुआ है। सिंघ हैदराबाद में हूरों का उपद्रव उनकी डाकेजनी का हश्य दिखलाकर मानों मुस्लिम लीग की नीति का ही मूर्त चित्र खीच

दिया था। इसी के साथ किसी भी स्वातत्र्य वीर के अन्तःकरण को ठेस न पहुचे इस बुद्धि से नेपाल की सरहद पर एक हाथ में कुकरी और दूसरे हाथ में ताजा-ताजा कटा हुआ आदमी का सिर लिये हुए शिखावान, हिंदू धर्म का भाग्य विधाता, गुरखा चित्रित कर रखा था।

इस नक्शे की स्त्रोर मैं बहुत देर तक खड़ा देखता रहा। पर जव वहां के एक अधिकारी ने जरा रोबदार आवाज में मुक्तसे पूछा कि 'आप मुसाफिर हैं !' तब मेरी यह विचार-तन्द्रा टूट गई। मेरी ग्र⊦मीण पोशाक को देखकर उसे कदाचित् ऐसा प्रतीत हुत्रा हो कि यह कोई बाहरी स्रादमी यो ही देखने के लिए इस जगह चला श्राया है। मैने कहा, 'हा'; साथ ही मैने अपने चमडे के वेग की छोर उसका ध्यान आकर्षित किया। इस वेग पर मेरे विचारशील पुत्र ने मेरे नाम श्रीर पद का जान करानेवाले श्रचर इस प्रकार लिख कर रखे थे कि अधली नजर वालो को भी उनका पता चल जाय। कहने की ज जरत नहीं कि उन ब्राह्मरों को देखते ही उस श्रिधिकारी के व्यवहार में 'हृदय-परिवर्तन' सा दृष्टिगोचर हुआ। रेलवे में जितना सामान मुफ्त मे एक यात्री ले जा सकता है. उतना ही यहा पर भी ले जाया जा सकता होगा। इस विचार से ऋस्मदादिक (हम) ने श्रपने साथ सामान लिया हुआ था । जब उस सामान को तोला गया श्रीर उसके ऋधिक पैसे मागे गये तव मालूम पडा कि एक बिस्तर की जितनी कीमत है उतना ही दिल्ली तक का उसका हवाई जहाज का किराया है। श्रौर इसके बाद जब उस श्रिधकारी ने मुक्के भी तुलायंत्र पर खडा होने के लिए कहा, तब यह व्यक्ति ग्रापने वजन के श्रानुसार तो कही किराया वसूल नहीं करेगा ऐसी भीति उत्पन्न हुई।

राजनीतिक वजन बहुत शीव्रता से बढ़ता ऋौर घटता है; पर शारीरिक वजन शीव्रता से घटता नहीं, यह तो स्पष्ट ही है। जेल में काली टोपी वाले कैदी इस प्रयत्न मे रहते हैं कि उनका भार कम हो जाय। इसके लिए वे रोज दौड लगाते हैं, अथवा अन्य अनेक प्रकार की दवाइया लेते हैं। इसके लिए कुछ समय की भी अपेचा रहती है। पर यहां तो एक निमेषार्ध में ही वजन किया जाने वाला था। सामने कांटा (तुला-कंटक), शरीर पर कांटा (भीति-निर्मित रोम: वंटक) श्रीर श्रिधक किराया मांग बैठे तो बटुए पर भी काटा (रुंकट) ऐसा कुछ टेढ़ा प्रसंग उपस्थित था। तथापि ऋपने कुलदैवता का स्मरण करके मैं उस तुलायंत्र पर ऋगरूढ हो ही गया। अन्त मे वजन किये जा चुकने के बाद जब उस अधिकारी ने कुछ भी नहीं कहा, तब बहुत स्नानन्द हुस्रा । इस गडबडी में हाथ में पकड़ने के डाक्युमेट बेग का वजन करना रह ही गया। पूना निवासियो की सहज चतुरता के साथ मैं उस बेग को हाथ मे लेकर जिस गति से सभामंडपो में प्रवेश किया करता था, उसी द्रुतगित से उस कम्पनी की बस में जा बैठा । श्रपनी इस चतुराई पर मैं मन-ही मन बडा खुरा हो रहा था। पर इतने मे नारियल के पेड जैसा ऊंचा पूरा, गज भर चौडा एक अंग्रेज भी ऋपने हाथ में वैसा ही बेग लेकर तुलायंत्र पर खडा हुऋा। कम्पनी वालों ने उससे कुछ भी ऋधिक पैसे नहीं लिये। तब कहीं मेरे ध्यान मे श्राया कि जिस बात को मैं स्रपना बडा भारी पराक्रम समभ रहा था, वह श्रीर कुछ नहीं निपट लंडकपन था।

गुलाब

तड़के-ही-तडके बम्बई की महालच्मी को बाई श्रोर छोडकर हमारी गाडी शांताकूज के हवाई जहाज के श्रड्डे पर पहुँची । वहां चाय का इन्तजाम था। बिस्कुटो का भी ढेर-सा पड़ा हुश्रा था। पर यह मुफ्त का था या दामों का था, इस बात का ठीक से श्रन्दाजा न लग सका। श्रतः श्रस्मदादिक (हम) ने सिर्फ चाय से ही काम चला लिया। परिचारिका

बिस्कुटो को आगे करते हुए बारबार इमसे उन्हें लेने के लिए आग्रह करती थी। पर मैं हर बार यह दिखाने का प्रयत्न करता कि मैं 'कम खाओं' के मत को मानने वालों में से एक हूँ।

हतने में भोपू की एक आवाज हमने सुनी। इसका सकेत यह था कि ठीक साढे छः बजे मुसाफिर लोग हवाई जहाज के पास जाय। हम सब स्त्री-पुरुप मिलाकर कोई पन्द्रह के करीब होगे। हम लोग विमान के साथ लगाई हुई सीढी पर से होकर विमान में जाकर बैठ गये। अनेक बार आकाश में उड़ने वाले विमानों को मैंने देखा था पर उसे समीप से देखने वा जीवन में यह पहला ही अवसर था। एक विशासकाय सामुद्रिक मत्स्य की-सी उसकी आकृति थी। जिस प्रकार बसो में मुसाफिरों के बैठने के लिए इन्तजाम रहता है ठीक वैसा ही कुर्सियों आदि का इन्तजाम यहां भी था। जुड़वा कुर्सियों की सात पिक्तिया थी और इकहरी कुर्सियों की सात; इस प्रकार कुल जमा इक्कीस मुनाफिरों के बैठने के लिए उसमें इन्तजाम किया हुआ था। कुर्सों पर बैठने के बाद यंत्र के चालू होने की आवाज़ आने लगी और जमीन पर ही लगभग आधा मील दौड़ लगाने के पश्चात् वह जमीन से अलग हो गया।

विमान में यात्रियों की सुविधा की देखरेख के लिए दो परिचारिकाए
निरुक्त थीं जो यात्रियों को कान में डालने के िं.ए रूई दें रहीं थीं ।
उनकी उस नीली पोशाक को, पाउडर से शुभ्र हुए बदन को ख्रौर लिपस्टिक से रक्तवत् रंजित ख्रोष्ठयुग्म को देखकर किसी भी 'वेदाग्यास जड' मनुष्य का हृदय च्च्या भर के लिए काव्यमय' हो उठता । चूकि यह यात्रा ब्राकाशमार्ग से हो रहीं थी ख्रतः स्वभावतः सुभे मेधदूत की "ईषत श्यामा, शेष विस्तार पाय्डु' वाली पिक्त स्मरण हो ख्राई । अन्तर इतना ही था कि उसमें ईषत श्यामा' लिखा हुख्रा था ख्रौर यहा मामला

था 'ईषतरक्ता' का ! हवाई जहाज की घरघर इतनी ज्यादा थी कि ह्यापस में एक-दूसरे से बातचीत करने मे भी आजाद मैदान मे भाषण देने से कम शक्ति नहीं लगती थी। ये परिचारिकाए या परिया, जब हवाई जहाज जमीन से ऊपर दी श्रोर उडने लगा तब हरएक यात्री से पट्टा बाधने के लिए कहने लगी। दूर से कहे तो किसी को सुनाई न दे; त्रातः हरेक के कान के पास मुंह लेजाकर उन्हे कहना पडता था। यात्रियो मे कुछ 'रसिक' यात्री भी थे, वे ऐसा दिखावा करते थे कि उन्हे उन परिचारि-कात्रों की बात कुछ भी सुनाई नहीं दी। जहाँ एंजिन रहता है उस भाग के द्वारदेश पर बिजली के प्रकाश मे अप्रोजी मे पट्टा बाधने का आदेश लगा हुआ मैने देखा श्रोर तत्काल ही कुर्सी से बधा हुआ वह पट्टा मैंने बाध लिया । जो लोग स्वय यह नहीं कर सकते थे उन्हें पद्या बाधने का काम भी परिचारिकात्रों को करना पडता था। फलतः उन यात्रियों को न केवल दृष्टि-सुख का श्रापितु ईपत् स्पर्श-सुख का भी लाभ हो जाता था। मैं चूंकि इतना 'श्राधुनिक' तबियत का नहीं था, श्रोर समाजवादी नीति में उतना परिपक्व नहीं था, इसलिए स्वातत्र्य का उपार्जन जिस प्रकार व्यक्ति को स्वय करना चाहिए उसी प्रकार यह 'बधन' का कार्य भी मैंने स्वयमेव कर लिया। ऊखली से जैसे श्रीकृष्ण को बाध दिया गया था वैसा ही कुछ, दृश्य ऋपनी-ऋपनी कुर्सियो से बधे हुए इन यात्रियो_,को दैखने पर ऋाखो के सामने उपस्थित होता था। विमान जब खूब ऊंचाई पर चला गया तब हमने ऋपना यह बधन खोल दिया। मानो परिपूर्ण विलास के उपमोगार्थ इन वधनकारी मेखलास्रो को हमने निकाल फेका हो। श्रब हमारी वायुयान की वास्तियिक यात्रा श्रारम्भ हुई।

सोने की साबरमती

पास के काच के रोशनदानों में से नीचे काक कर देखने पर नीचे के खेत ऐसे नजर ख्राते थे जैसे कि नाना प्रकार के रंगों वाले चिथडों को सीकर बनाई गई गुदडी नजर ख्राती है। खेतों को देखकर ऐसा भी मालूम पड़ता था मानो बड़े-बड़े मैदानों में छोटी-छोटी वाबियाँ फैली पड़ी हो! हम समुद्र के किनारे-किनारे चले जा रहे थे। एक नदी के बाद दूसरी नदी समुद्र में छलाँग मारती नजर ख्राती थे। कालिदास के द्वारा वर्णित "पिबत्यसो पाययते च सिन्धुः" का यथार्थ ख्रनुभव इस च्ला मुक्ते हो रहा था। किसी एक बड़ो नदी से मिलनेवाले छोटे-छोटे जलप्रवाहों को हम देखते थे तो ऐसा प्रतीत होने लगता था मानो किसी बड़ी-बड़ी टहनियों वाले पेड़ की छाह जमीन पर पड़ी हुई हो! रेलवे लाहन रोमराजी की भाँति भासित होती थी। किसी ख्रस्पष्ट स्व प के हिलने डुलने को देख कर हम कहाना कर सकते थे कि खेतों में हल जोता जा रहा है।

प्रति घटे विमानवाहक कार्ड पर यह स्चित किया जाता था कि हम अब किस स्थान पर हैं, कितनी ऊंचाई पर है तथा किस वेग से उड रहे हैं। बाहर के तापमान का पता भी वह देता जाता था। दस हजार फुट की ऊंचाई पर प्रति घटा १७५ मील की रफ्तार से हम जा रहे हैं, अब हमारा विमान स्रत पर है, बाहर का तापकान १५ है और ठीक द बजे हम अहमदाबाद पहुंच जायेंगे यह भी उसमे बताया हुआ था। बाहर कल्पनातीत नयन-मनोरम हश्य आँखों के आगे आते थे और इघर अन्दर परिचारिकाएं मुस्कराती हुई 'आपको चाकलेट चाहिए १' 'विमान-यात्रा के कोई विकार तो नहीं हुए न आपको १' 'कोलेन वाटर लाऊं आपके लिए १' इत्यादि प्रश्न पूछती थीं।

बाहर के सफ़ेद बादलों को कभी एक श्रोर को घकेल कर, कभी उन्हें

नीचे करके तो कभी स्वय उनके नीचे से निकलकर विमानवाहक हमे यह 'धर्मशिद्धा' पढा रहा था कि 'साधनानामनेकता' (स्व० लो० तिलक का वाक्य) ही त्रपने ध्येय को इस्तगत करने का श्रेष्ठ उपाय है। अन्दर श्रीर बाहर के शुभ्र मेधी की भाति ये दोनों परिचारिकाए विद्युलता की तरह इधर से उधर त्राती-जाती थी। श्रीर इस बीच विद्युलता की कौंध के पश्चात जैसे भाभावृष्टि त्याती है उसी प्रकार बाहर काले बादल नज़र श्राने लगे। बरसात की फाडियाँ गुरु हो गई श्रोर प्रदर्शनियों के हिंडोलों की तरह हमारा विमान चारा में ऊपर तो चारा में नीचे होने लगा। बोर्ड पर फिर पट्टे बाँघ लेने का आदेश दिखाई देने लगा। पाँच मिनटो मे ही मुसाफिरो की हालत बुरी हो गई, कुछ को उलटियाँ भी हुई । परिचा-रिकाएं मस्तैदी के साथ इधर-उधर जा रही थी। स्मेलिंग साल्ट तथा कोलन वाटर की पडियाँ बाँध रही थी। मैं सोचता था, शायद मफे भी ये विकार होगे श्रौर उन परिचारिकाश्रो के धात्रीकार्य का कोमल अनुभव प्राप्त करने का अवसर मुभ्ते भी मिलेगा। पर मुभ्ते कुछ भी नहीं हुआ। मैं तो 'स्थाग्रारयं पुरुषः' की भाँति सर्वया निर्विकार स्रवस्था मे था। केवल 'रिसकता' के लिए कुछ करे तो उसकी भी श्रव उम्र नहीं रह गई थी। इसके अतिरिक्त यह भी डर था कि अगर ऐसा-वैसा कुछ कर बैठूं तो कोई गेस्टापो इस गल्प को कुछ स्त्रीर नोन-मिर्च लगाकर पुरवपत्तन तक पहॅचाये बगैर नहीं रहेगा।

दस मिनटो तक इसी वातावरण में हमारे विमान ने यात्रा जारी रखी श्रीर मा बजे के लगभग मिलो की ऊंची-ऊची चिमनियों से विभ्षित श्रहमदाबाद की नगरी दिखाई देने लगी। साबरमती नदी शहर के बीच में से श्रपने पूरे यौवन में उमडी बह रही थी; श्रीर बिजली के कारज़ाने के पास वाली साबरमती जेल का, जहां कुछ काल के लिए मैं भी रह चुका हूं, परकोटा दिखाई दे रहा था। युद्धकाल मे श्राप लोग यदि श्रपने मालिको से किसी किस्म का भगडा या श्रमहयोग न करे तो यह सावरमती 'सुवर्णमती' हो जायगी ऐसी वल्लभभाई पटेल ने घोपणा की थी। वस्तुस्थित भी वैसी ही है। करोडो ग्राहको को नग्न तथा श्रर्थनग्न रखकर मिल मालिको ने श्रपनी चादी बनाई, यह तो सर्वविदित वस्तु है। स्मृद्धि का उन्माद ही मानो इस उमड कर बहने वाली साबरमती के पानी की शक्ल मे दिग्वाई दे रहा था। "दूरस्थ भूधरा रम्याः" यह भले ही सल्य हो तथापि श्रहमदाबाद की मैली-कुचली बस्ती दस हजार फुट ऊचाई पर से भी वैसी ही दिखाई देती थी। जिस जगह सत्याग्रहाश्रम हो वहीं काले बाज़ार का विद्यापीठ भी हो, जहाँ सर्वसगपरित्यागी महातमा रहता हो वहीं गरीबो के चीथडो तक को खसोट लेने वाले महाभाग निवास करते हो, यह बात इसी तथ्य पर प्रकाश डालती है कि यह विश्व हु ते से भरा हुश्रा है।

भू भगत हुये !

श्रहमदाबाद शहर पर से होकर हवाई श्रड्डे पर उतरते समय इस प्रकार के विचार श्राये बगैर न रहे, यह सच है। हवाई जहाज जब नीचे उतरने लगा उस समय फिर 'पट्टे' बाधने का प्रादेश मिला श्रीर कुछ ही मिनटो में हम ''भूमिगत'' हो गये। श्रहमदाबाद के हवाई श्रड्डे पर हमें जो न्याहार (नाश्ता) दिया गया, उसमे क्या था यह बताकर में सनातनी पाठकों के हृदय को ठेस पहुंचाना नहीं चाहना पर इतना मै श्रवश्य कहूंगा कि इन यात्री हिन्दुश्रों में से बहुतेर मु जे प्रणीत सिद्ध होते है। उपहारण्ह, के बटलर ने मेरो विच्तित वेपभूषा को देखकर भी जब लजापूर्वक मुफे कुनिसात किया तो उसे मैंने भी बख्शीश दी। कुछ ही देर मे हम फिर श्राकाशमार्गी हो गये।

बम्बई से ऋहमदाबाद तक व्यवस्था यह थी कि एक श्रोर जमीन, दूसरी श्रोर समुद्र श्रोर हम आकाश मे। श्रव एक दृष्टि से चारो पाश्वों मे जमीन तो एक दृष्टि से श्राठो दिशाश्रो मे श्रान्त श्राकाश—यह श्रवस्था हो गई। श्रवली के जैसे बड़े-बड़े पर्वत, दिवाली के दिनो मे किले के नजदीक छोटे-छोटे बच्चे जिस प्रकार पहाडियों का रन करते हैं वैसे दिखाई दैते थे। राजपूताने के गावों का दब कुछ मिन्न प्रकार का था। बहुत से गावों मे बड़े-बड़े तालाब नजर श्राते थे। दाये हाथ की श्रोर से उदयपुर पिछे छोड़कर हम श्रागे बढ रहे थे। उदयपुर को मैंने बहुत बार देखा है इसलिए उसे देखने पर श्रनेक बाते हठात् व्यान मे श्रा गई। कुछ ही च्यों में हम जयपुर पहुच गये। मतलब जयपुर नगर के ऊपर के श्रत रच्च में श्रा गये। रेखाबद्व एवं सुन्दर गलीचा जिस प्रकार प्रतीत होता है। वैसा यह जयपुर शहर श्रन्तरिच्च से देखने पर प्रतीत होता है। इमारा विमान पलको ही पलको मे प्रति घरटे १७५ मील के वेग से दिल्ली की श्रोर स्तपटता चला जा रहा था।

दिल्ली की परिचित वस्तुएँ दिखाई देने लगी। वह पुराना किला, वह कुतुवमीनार, व सेक्टेरियट की इमारत, वह सभागृह धीमे-धीमे दिखाई देने लगा। प्राचीन वैभव तथा वीरकृतियो वाले शहरों को हम पीछे छोड आये थे। आधुनिक जग को हम समीप कर रहे थे। राजपूतों के वैयक्तिक शौर्य की कथाएँ आज इतिहास की वस्तुये रह गई है, उन्हीं शूर राजाओं के वंशज घोड़ों का उपयोग युद्धकालिक आक्रमण-कार्य के लिए न करके रेस (घुड़दौड) के लिए करने लग गये हैं। जिन लोगों ने कभी प्रतिज्ञा की थीं कि दिल्ली को जीते बगैर हम सोने के थालों में भोजन नहीं करेंगे, कोमल शय्या पर नहीं सोयेंगे, वहीं लोग आज दिल्ली की प्रचलित राज-सत्ता के गुलाम बने हुये हैं। उनके राजमहल भी वाइसराय के राजमहल के

श्रास-पास बस गये। तलवार की खनखनाहट की जगह प्रस्तावी पर सशी-धनो त्रीर उपसशोधनो की त्रावाज ही ग्राज यहा सुनाई देती है। राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य की ग्राकान्ताग्रों के स्थान पर त्राज किस जाति को कितनी नौकरिया मिलती हैं, इसी का ऊहापोह रातिदन चलता रहता है। अपने सिरों को श्रपने हाथ की तलवार ही से काटक रमात्रभीम के चरणों पर भेंट चढाने की श्रहमहिमका के स्थान पर श्राज लोगों की श्रहमहिमका इस बात में हे कि कौन गुलामी में वाजी मार ले जाता है । यह सब कुछ करते हुए भी इस बात का एक ऋहंकार उसी प्रकार बना हुआ है कि. इम जो कुछ करते हैं सब बिलकुल ठीक ही करते है। मराठो के पूर्वज दिल्ली को जीतने के लिये आये थे. सुलहनामे करने के लिए आये थे 'शापादिप शरादिप' के न्याय से दिल्ली के सिहासन पर बैठने या उसके दुक्तडे-दुक्डे करने के लिए त्राये थे, पर त्राज के उन्हीं के वशाज यहाँ किस लिए श्राये थे ?--यह प्रार्थना करने के लिए कि तीन पैसे के कार्ड की कीमत कम करके दो पैसे कर दी जाय।

जब मैं दस हजार पुट की ऊंचाई पर से नीचे उतर रहा था उस समय मेरे मस्तिष्क मे इस प्रनार के अनेक विचार घूम रहे थे। विमान जमीन पर आया, मन के अन्तर्गत विचारों ने वस्तुस्थिति का ज्ञान करा दिया और मैं समभता हूँ, डेट साँ रुपये खर्च करके किये गये इस प्रवास का इतना फायदा भी क्या कम है ?

क्या हमें भी मताधिकार रहेगा ?

र्भनम्न, श्रधपेट, पूर्ण श्रज्ञानी, पूर्णतया निराश इत्यादि स्वरूप का वर्णन जिस प्रदेश के खेतिहरों के सबंध में किया जा सकता है, श्रब से ठीक चौबीस घंटे पहले मैं उस प्रदेश में था श्रीर लगभग यही-का-यही वर्णन श्राज से तीस वर्ष पूर्व की रूस की परिस्थित के लिए भी उपयुक्त बैठता है।

"इस अवनत, असगिठन अवस्था में से आज का प्रभावी एवं पराक्रमी रूख किस प्रकार निर्मित हुआ ? दीन एवं दुर्वल खेतिहर तीस वर्षों में मानो ओर स्वामिमानी कैसे बन गया ? नादान ओर अज्ञानी अन्धश्रद्धा और मूर्खतापूर्ण धारणाओं का दास आज पुरोगामी और प्रगतिप्रिय कैसे हो गया; रूस के साफल्य का रहस्य किस बात में हैं ? यह जादू किसने कर दिखाया है ?" ये शब्द २२ फरवरी के दिन लाल सैन्य के वार्षिक दिवस के निमित्त बम्बई में आयों.जेत सभा के अध्यत्त-पद से दिये गये भाषण के प्रारम्भ में मेरे मुंह से निकले।

यह समारम्भ कामा इन्स्टिट्यूट हाल मे हो रहा था। सैकड़ों नागरिक उस सभा में उपस्थित थे। विशेष महत्व की बात यह कि इस सभा में ब्रिटिश सैनिक और नाविक दल के सैनिक भी बहुत बड़ी सख्या में उपस्थित थे। सोवियट मित्र संघ की ओर से यह समारम्भ किया जा रहा था। इस संघ के बारे में लोगों की राय यह थी कि यह साम्यवादी लोगों के रंगरूट भर्ती करने का एक प्रधान साधन है। सोवियट तत्वज्ञान के सबध में पूर्णत्या सहमत न होते हुए भी ऐसा मानने वालों की संख्या कम नहीं है जो उसके बाह्याश को स्वीकार करने के लिए तय्यार हैं।

साम्यवादियों की देश-सेवा

भारतीय साम्यवादियों ने '४२ के द्यादोलनकाल में जो भूमिका स्वीकार की थी, उनके नेतात्रों ने जो वक्तव्य प्रकाशित किये थे, उस पक्त के सभासदों ने जो देश-सेवा की थी, उसके कारण कांग्रेस के सर्व-सामान्य कार्यकर्तागण बुरी तरह बिगड़े हुए थे। किन्ही-किन्ही कार्यकर्ताश्रों को सभाश्रों में साम्यवादी पक्त का तथा कार्यकर्ताश्रों का किसी भी श्रवस्था में साथ न देने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किये जा चुके थे। कुछ कार्य-कर्ता तो कहते थे कि कम्युनिस्टों के साथ किसी प्रकार का सामाजिक संबंध भी न रखा जाय। इन सारी प्रवृत्तियों एवं मतप्रणालियों का प्रतिबन्ध महाराष्ट्र की राजनीति पर भी पडा था। यह होते हुए भी इस समारम्भ का श्रध्यक्त-पद मैंने जो मंजूर किया था, वह पूर्ण विचार तथा श्रपने माथियों की सलाह लेने के बाद ही किया था। इस मौके का पूरा फायदा उठाते हुए मैंने यह प्रदर्शित करने का निश्चय किया था कि साम्यवादियों की ''ते हैं हैं की भूमिका कितनी श्रशुद्ध हैं। साम्यवादी पक्त ने देश के तथा कांग्रेस के विच्छ जो सबसे बडा श्रपराध किया था, वह उनका इम मौजूदा युद्ध को ''लोकयुद्ध" कहकर उसे नैतिक पृष्ठपोषण प्रदान

करना था। इस पच्च ने प्रत्यच्च युद्ध में मले ही भाग न लिया हो, उसने रंगरूटों की भर्ती न की हो, अन्य सब बातों में उसने कांग्रेस की ही बात मानी हो, राष्ट्रीय सरकार की मांग, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, नेताओं की रिहाई श्रादि के बारे में उसने भले ही निष्ठापूर्वक आदेशिलन किया हो तथापि इन कारणों से उसके उपयुक्त पापों का प्रचालन हो गया, ऐसा मानने के लिए मैं कभी तैयार नहीं था। इसलिए जेल से छूटकर आने के पश्चात् में उनसे असहयोग न करके जब भी कभी मुक्ते मौका मिलता मैं इस बात का स्पष्टीकरण किया करता था कि उनकी यह "लोकयुद्ध" की कल्पना अशुद्ध है। उन लोगों की कर्दाचित् मेरे बारे में यह धारणा रही हो कि समारम्भ के लिए आमंत्रित यह मेहमान हमारे विरुद्ध क्या भाषण देगा ! सोवियट सैन्य के समारम्भ अवसर पर उन्हे एक कांग्रेस न की आवश्यकता थी। मुक्ते बम्बई की सयानी जनता के सामने कांग्रेस कीं युद्ध-विषयक नीति का खुले तौर पर स्पष्टीकरण भी करना था।

रूस की सफलता का रहस्य

उपस्थित जनसमुदाय में बम्बई के सब पन्नों के लोग तो थे ही पर उसमें, अधिक महत्व की बात यह थी कि, लगभग सौ के करीब ब्रिटिश सैनिक भी थे। इसे ध्यान में रखते हुए मैंने कहा, शस्त्रास्त्रों की अपेन्ना हढता ही सफलता की सबसे श्रेष्ठ मनोवृत्ति है। इस मनोवृत्ति के तैयार होने के लिए देश के जीवन की अपुरूरपता का होना आवश्यक होता है। फास ने शरणागित स्वीकार कर ली पर फांस की अपेन्ना भी कई गुना अधिक जोर का हमला होने पर भी रूस ने हार नहीं मानी। उसकी इच्छाशक्ति अवनत नहीं हुई, उसकी गर्दन नहीं मुकी। इसके रहस्य को हमें जानने की कोशिश करनी चाहिए। लडने वाले प्रत्येक सैनिक को, राष्ट्रवादी प्रत्येक नागरिक को, इस बात की प्रतीति रहती है कि देश उसका अपना है। राष्ट्र की

संपत्ति का निर्माण उसी ने किया है। इस बात का ऋभिमान तथा उसका बटवारा न्याय के ऋनुसार होगा ऐसा ऋनुभव एवं विश्वास उसे रहता है। राज्य जनता का है श्रीर वह वास्तव मे जनता ही के लिए है। इस बात का विश्वास ही रूसी सेना के पराक्रम का कारण है। देश पर आक्रमण होने से सामान्य जनता दुर्दशा को प्राप्त होगी, देश की विजय होने से सामान्य जनता की ही उसमे विजय है, यह समीकरण वहाँ पर विद्यमान है। श्रतः उस देश के लिए वह लोकयुद्ध है। वहाँ कोई यह घोषणा करके सैनिको की भर्ती नहीं करता कि तुम्हें १६ रुपया पगार (वेतन) तथा खाना श्रीर कपडा-लत्ता मुफ्त मे दिया जायगा इसलिए फीज में भर्ती हो जास्रो । स्रपने देश मे इ "लोकयुद्ध" का नाम देना हास्यास्पद ही े हैं। इस प्रचलित युद्ध को यदि उत्पत्ति, स्थिति श्रीर लय इन तीनो की कसौटियो पर कस कर देखा जाय तो भारत की दृष्टि से इसे लोकयुद्ध नहीं कहा जा सकता। युद्ध की घोषणा करते समय जनता से सम्मति नहीं ली गई। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् जनता की ऋेचा विटिश साम्राज्यवादियो का पाश ही मजबूत होने वाला है। भ.रत को यदि तस्काल स्वातन्त्य दे दिया जाय श्रथवा वह पूर्ण लोकसत्तात्मक हो तो भारतवर्ष की जनता रूसी जनता के ममान युद्ध मे भाग लेगी, शालीवाहन की तरह यह स्वातन्त्र्य भी अवसर पडने पर मिट्टी में से सैनिको का निर्माण करेगा। यह कीमिया स्वातन्त्र्य का श्रमृत ही निर्माण करेगा। श्राज भी चर्चिल साहब कहते हैं कि जो वस्तु हमारी है हम उसे कदापि नहीं छोडेंगे I ऐसी अवस्था में युद्ध के , ब्रानन्तर भारत को स्वातन्त्र्य मिल ही जायगा इसे किस मुँह से उक्तियुक्त कहा जा सकता है। चर्चिल साहब तो यह भी नहीं चाहते कि नवीन इंग्लैंड का निर्माण हो । जिस इंग्लैंड में पैंसठ प्रतिशत जमीन त्राठ प्रति-शत लोगों के हाथ में है, जहां वार्धिक श्राय का श्रस्सी प्रतिशत भाग पन्द्रह प्रतिशत लोगों को मिलता है, ऐसे इंग्लैंड को बनाये रखने के लिए चर्चिल साइब श्रम धर्म श्रीर श्रश्रु का व्यय करने के लिए तैयार हैं। प्रिमरोज इंग्लैंड की, डबीं में भाग लेंने वाले इंग्लैंड की श्रर्थात् एक दृष्टि से सामाजिक विषमता से युक्त इंग्लैंड की रचा चर्चिल साइब को करनी है। स्वातन्त्र्य के मिलने पर तथा वास्तिवक श्रथों में जनता का स्वातन्त्र्य मिलने पर श्रर्थात् जनता को यदि यह पूर्ण विश्वास हो जाय कि युद्ध के श्रनन्तर श्रार्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना श्रवश्य होगी तो इंग्लैंड की जनता श्रिषक उत्साह से युद्ध में भाग लेंगी ऐसी युक्ति वहा के लोकनेतात्रों की है। यहा यदि इस प्रकार का स्वातन्त्र्य मिल जाय तो हमारे मामा (मुक्त से पूर्व मामा वरेरकर का भाषण् हुआ था) भी शेलार-मामा (मामा वरेरकर एक साहित्यक हैं। शेलार मामा एक वड़ा वीर शिवाजी के समय में था।) की तरह लडने के लिए तैयार हो जायेंगे। पू जीवाद के लिए, साम्राज्यवाद के लिए, सोलह रूपयों के लिये जनता नई। लडेगी। श्रीर जनता की जब तक यह मनोदशा है तब तक इस युद्ध को ''लोकयुद्ध'' नहीं कहा जा सकता।

ब्रिटिश राज्य नहीं चाहिए

भापण के समय चर्चिल के विरुद्ध की गई वाक्-कीडा ब्रिटिश सैनिकों को विशेष रुचिकर प्रतीत हुई-सी दृष्टिगत होती थी। काग्रेसी जनता प्रसन्न दृष्टिगत होती थी। साम्यवादी मित्र कुछ पशोपेश मे पडे हुए-से दिखाई देते थे। 'पराक्रमी रूसी फीजां का हिटलरी जर्मनी का नाश करके बर्लिन पर लाल क्रडा फहरा देने से ही काम पूरा नहीं होगा। जब साम्यवादी स्रादशों की जीत होगी स्रौर जब चर्चिली इंग्लैंड का परामव होगा तभी सच्ची सम्यता का क्रडा खडा किया जा सकेगा स्रौर तभी युद्ध की समाप्ति होगी स्रथवा सच्ची विश्वशाति का प्रारम्भ होगा। मेरे भाषण समाप्त करते ही सभा के समस्त वातावरण मे एक प्रकार का विचित्र परिवर्गन उपस्थित हो

गया। प्लेटफाम से नीचे उतरने पर दस-बारह ब्रिटिश सैनिक मेरे चारो तरफ जमा हो गये श्रौर उनमें से एक ने मेरा श्रिमिनन्दन करते हुए कहा, "श्रापका व्याख्यान सुन्दर (ब्यूटिफुल) रहा।"

मैंने कहा—"यह तो कुछ नहीं कहा जा सकता, हा कुछ लहमार (ब्लंट) अवश्य हुआ है।"

एक ने पूछा—"हम सैनिक लोग श्रापके देश के लिए क्या करें ?" इस प्रश्न का उत्तर श्रासान नहीं था। पर देना श्रावश्यक था। मैंने कहा—"जब श्राप श्रपने देश में जायेगे, तब श्रपने देशबन्धुश्रों से किह्यिगा कि भारत को ब्रिटिश राज्य नहीं चाहिए। चुनाव के समय उसी उम्मीदवार को वोट दीजिए जो भारतीय स्वातन्त्र्य का पन्न-पोषण करता हो, तथा जो भारत के स्वातन्त्र्य के लिए कटिबद्ध हो।"

एक-दम पाच-छह लोगो ने प्रश्न किया, ''शैल वी हैव वोट्स एट ब्राल १'' (क्या हमें मताधिकार होगा १) पर मेरेपास इस प्रश्न के लिए कोई उत्तर नहीं था।

किसका श्रम और किसको आराम ?

जिन सैनिकों ने श्रपने जीवन को तृण्वत् समभा, घरवार छोडकर जो विश्व की श्रनेक सीमा तक चले गये श्रीर जो मृत्यु से श्रखंड रूप में भगडते रहे उन सैनिकों को श्रपने देश का भविष्य रेखांकित करने का कुछ भी श्रिधकार न रहे यह बात क्या है ? देश के सरज्ञ्ण के लिए राष्ट्रीय भावना को जागरित करने वाला पूंजीपित वर्ग तथा उसके पोष्य लोकनेता सकट के समाप्त होने पर पुनः पूर्वपद पर चले जायेंगे क्या ? किसका श्रम श्रीर किसको श्रासम ! कौन मरे श्रीर किसकी स्वार्थिसि हो ! चर्चिल की युद्धकालीन घोषणाश्रों को स्वयं उसके देश-बाधव सत्य मानने के लिए तैयार नहीं हैं, यही श्रथं हुश्रा न ? दो राष्ट्रों की जनता में किसी

प्रकार का वैरभाव न रहने पर भी सामान्य मनुष्य ग्रसामान्य उत्साह के साथ युद्ध मे भाग लेकर फिर एक बार भोखा खा जायेंगे, यही इसका श्चर्थ हुश्रा न १ जो लडा, जिसने श्रम किया उसे कुछ भी श्रिधकार नहीं ! इसका यही ऋर्थ हम्रा कि दुनियाँ में कृतज्ञता नाम की कोई वस्त नहीं है। श्रीर मेरे दिमाग मे जब इस प्रकार के ख्याल स्त्रा रहे थे उस वक्त गत युद्ध के विजय के श्रनन्तर श्रध्यज्ञीय निर्वाचन के लिए खड़े हुए तथा पराजित हुऐ फ्रेंच राजनीतिज्ञ क्लेमनको के शब्द स्मरण हो स्राये। गत युद्ध मे विजय का कारण वही था, यह सब कोई मानता था। पर युद्ध के स्मनन्तर निर्वाचन मे असफल हो जाने पर इंग्लिश पन्त प्रधान लाइड जार्ज ने उस से कहा--"क्या यही देश की कृतज्ञता है ?" इस पर क्लेमनको ने उत्तर देते हए कहा-''माई फ्रेंड दैयर इज़ नो ग्रटिटयूड इन पालटिक्स (प्रिय मित्र, राजनीति में कृतज्ञता के लिए कोई स्थान नहीं है) श्रीर जुलाई मास में निर्वाचन करवा कर चर्चिल ने भी क्लेमनको के सिद्धांत ही की पृष्टि की थी। लाखो लोगो को वंचित किया गया था ऋौर राजनीति में चलता भी यही है। जो निष्ठावान होते हैं वे बेचारे काम ऋा जाते हैं। जो धोखेबाज होते है, कार्यसाधू होते है वे काम बना जाते हैं। "हनुमान को तेल श्रीर विमीषण को लंका" यह राजनीति का सिद्धांत तो बहुत पुराने जमाने से चला त्रा ही रहा है।

काश, हम मानवता का सम्मान करते !

भिक्त प्रकार श्राप भीतर घुस श्राये हैं, श्रापको शर्म नहीं श्राती ?"
"बहुत श्रधिक श्राती है, पर चूकि सार्वजनिक काम का
महत्व भी उतना ही श्राविक है इसीलिए मुभो इस प्रकार भीतर घुसना
पड़ा।"

यह बातचीत ५ मई १६४६ की ब्राधी रात को करहाड स्टेशन पर खड़ी हुई मेल ट्रेन के सैकन्ड क्लास के एक डिब्बे में हुई। उस दिन कर्हाड़ में बहुत बड़ा जन-समुदाय एकत्र हुआ था। कृष्णा श्रीर कोयना के संगम पर जनता त्रीर कृषि कार्यकर्ताओं का संगम हुआ था। दो-अदाई वर्षों के अज्ञातवास में से तप श्रीर दमक कर निकले हुए, जनता के तथा ६३ धारायी सरकार के अनेक कार्यकर्ता वहा प्रकट होने वाले थे। उनका सत्कार वहां होने जा रहा था। नदी के किनारे कर्हाड के नागरिकों ने समा-रम्म की व्यवस्था कुळ ऐसी कर रखी थी कि उसे देखकर लगता था मानो

वहां कोई छोटा-मोटा काग्रेस का श्रिघवेशन हो रहा हो। भारीजन-समुदाय की उपस्थित के कारण कुछ श्रव्यवस्था भी थी। पाडु मास्टर जब बोलने के लिए खड़े हुए तो एकाएक दूरध्वनिद्येषक की श्रावाज़ ही खत्म हो गई। कदाचित् उसे ऐसा प्रतीत हुश्रा हो कि पाडु मास्टर की श्रावाज़ सुनकर भीड-भड़का श्रीर ज्यादा बढ जायेगा। या पाडु मास्टर की उपस्थिति का ज्ञान पुलिसवालों को हो जायेगा, कदाचित् इस भय के कारण उस यंत्र ने मुंह बन्द कर लिया हो। जो कुछ भी हो, रात के दस बजे तक सभा का कार्य चलता रहा।

सभा की समाप्ति के पश्चात् मुभ्ते पूने की स्त्रोर लौटने की जल्दी थी, इसलिए मैं कर्हाड स्टेशन पर ऋा गया था। उस ऐतिहासिक सभा के श्रध्यत्त-पद पर श्रिभमानपूर्वक विराजमान हुत्रा मैं एक यात्री के श्रपमाना-स्पद प्रश्न का इतनी शान्ति से उत्तर दे रहा था, यह मुफ्ते स्राज भी सत्य नहीं प्रतीत होता । मेरे श्रतिरिक्त श्रन्य सैकडों लोग सभा का काम समाप्त करके अपने-अपने गाव की श्रोर जाने के लिए स्टेशन पर श्राये हुए थे। स्टेशन के ऋधिकारी ने मुभ्ते इस भरोसे पर टिकट बनाकर दिया था कि कदाचित् सेकन्ड क्लास के डिब्बे मे जगह मिल जायेगी। इतना ही नही श्चंगद-नीति का श्रवलम्बन करने का, श्रर्थात् खिडकी के रास्ते डिब्बे मे घुसने का जो पराक्रम मैंने उस समय प्रदर्शित किया था, उसका सारा श्रंय उन्ही ऋधिकारी महोदय को था । दो-तीन मिनिट तक मैं उनके साथ इधर-उधर डिब्बो मे जगह तलाशता रहा । मेरे साथ कितने ही अन्य कार्यकर्ता भी थे। जब कही जगह न मिली तब मैंने एक डिब्बे मे नीचे थोड़ी-सी जगह खाली देखकर उसमे घुसने का प्रयत्न किया। मगर डिब्बे में बैठे हुए यात्रियों ने ग्रन्दर से बुरी तरह दरवाजा बन्द कर रखा था। जब मैने देखा कि उन लोगों ने दरवाजा न खोलने की क्सम खा रखी है तब मुक्ते खिडकी के रास्ते डिब्बे के भीतर घुसने के लिए लाचार होना पडा । वह डिब्बा प्लेटपार्म से कुछ हट कर था। मैं बिलकुल सच कहता हूँ कि मुफ्ते कार्यकर्तात्रों के कन्धों पर सवार होकर खिडकी के रास्ते डिब्बे के भीतर प्रवेश करना पड़ा। मेरे पैर ज्योंही फर्श पर पड़े त्योही एकदम शत्रपच ने मुफ्ते चारो स्रोर से घेर लिया नीचे तीन स्रौर ऊपर तीन, इस प्रकार सोये हए छहो के छहीं यात्री उठकर तथा हडबड़ाकर ऐसे खड़े हो गये मानो उनके जीवन ग्रौर वित्त पर कोई भारी संकट ग्रा खडा हुन्गा हो । उन लोगो ने मोर्चा ठानने के लिए पूरी तरह ने कमर कस ली थी। रोमेल ने ग्रगर चाहा भी होता तो वह इतना सफल व्यूह न रच पाता । सुदैव की वात इतनी ही थी कि वे सारे शस्त्रविहीन थे। फिर भी वे मेरे विरुद्ध सगठित हो गए थे। तीसरे दर्जे की भीड का मुभ्ते पूरा अनुभव था। उस दर्जे के यात्रियों की मनोवृत्ति का मुक्ते पूर्ण ज्ञान है। अन्दर जाते समय वे कितना भी विरोध क्योन करे, पर श्रन्दर चले जाने के बाद उनका यह भाव लुप्त हो जाता है श्रीर वर्तन मे भरा हुश्रा श्रनाज जिस प्रकार हिलाने से नीचे बैठ जाता है उसी प्रकार गाड़ी के चलने पर सब लोग एक-दसरे के लिए यथाशक्ति सुविधा कर देते है। कारण उस दर्जें में मानवता का लोप नहीं हुआ होता। वहाँ सही माने मे भीड होने पर भी जगह मिल जाती है। पर यहा भरपूर जगह रहने पर भी भीड़-मड़क्के की शिवायत बनी हुई थी।

''यह सारी जगह रिज़र्व है," उनमे से एक ने जरा श्रकड कर कहा। ''हा, मुक्ते इसका ज्ञान है," मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

"श्रापका सामान हम उठाकर फेक देंगे।"

"कीमती चीज तो मेरेपास कुछ है ही नहीं, ग्रक्ता में श्रीर मेरा मौजन्य, यही मेरा सामान है। इसमें से एक को श्राप नहीं फेंक पार्येंगे श्रोर दूसरे को मैं नहीं फेक सक्रा।"

यह सारा सवाल-जवाब अंग्रेजी मे हो रहा था और इच्छा न रहते हुए भी मुफ्ते अंग्रेजी बोलनी पड़ रही थी। वे लोग तैश में आकर बोल रहे थे, मैं सर्वदा शान्ति भाव से उत्तर देता जा रहा था। अभिमन्यु की नीति का अवलम्बन करने का वह मौका नहीं था। पुनश्च, अभिमन्यु की और मेरी उम्र मे भी तो कोई साम्य नहीं था। अतः मैं युधिष्ठिर की-सी शात-वृत्ति धारण करने के प्रयत्न में था। इस हिंसा और अहिंसा की मुठमेड़ मे जो पहले आहत हुआ वह एक स्त्री थी, जो उन यात्रियों के साथ यात्रा कर रही थी। वह माई तो चुप वर्थ पर जाकर पड़ रही और मुह पर ओढ़नी ढंककर उसने बाह्य सृष्टि को अपनी दृष्टि से ओफल कर दिया उनमें से एक ने मुफ्ते धमकी देते हुए कहा—''अभी स्टेशन मास्टर से कहकर मैं आपको बाहर निकलवा देता हूँ।"

"जिसने मुभो यहा लाकर पहुचाया है वह मुभो यहा से काहे को बाहर निकालेगा ?" मैंने ऋात्मविश्वास के साथ कहा ।

इस पर उनमें से एक ने मेरी अवल पर कुछ छींटे कसे । पर मैने अत्यन्त शान्त स्वर में कहा—"मैं बहुत ज्यादा अवलमन्दी का दावा नहीं करता । महत्वपूर्ण सार्वजनिक काम आ पड़ा है, इसिलए मेरे लिए जाना अनिवार्य है । जो कुछ मैं कर रहा हू वह गलत है यह मैं जानता हूं, पर वैसा करने के लिए कारण भी इतने ही प्रवल है. इसीलिए मुक्ते ऐसा करना पड़ रहा है ।"

इसके बाद एक दूसरा विरोधी योद्धा भी धराशायी हो गया। ऊपर वर्थ से जो महानुभाव छलाग मारकर नीचे ह्या धमके थे वह उतनी ही चपलता के साथ ऊपर चले गए। बचे हुए लोगो मे एक मिया भाई भी ये जिनकी परिचायिका श्राकृति स्पष्ट रूप से उनके झहं विशेष भाव पर प्रकाश डाल रही थी। उन्होंने श्रपनी ''खास'' श्रप्रेज़ी में बोलना शुरू किया श्रीर कहा, ''मैं जंजीर खींच लूँगा।

मैंने कहा—"श्रापके जंजीर खीच देने से इतना ही होगा कि गाड़ी खड़ी हो जायेगी, पर यह भी श्राप देख लेगे कि जब तक मुक्ते गाड़ी में ले नहीं लेंगे तब तक मुक्ते विदा दैने श्राप हुए लोग इस गाड़ी को एक इंच भी श्रागे नहीं बढ़ने ढेंगे।"

मिया भाई ने एक बार श्रपने सिर पर श्रीर फिर श्रपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। ऐसा मालूम पड़ा कि वह कदाचित् 'डायरेक्ट ऐक्शन' की स्फूर्ति की प्रतीच्या में है। इतने मे स्टेशन के श्रिधकारी ने जोर से उनसे पूछा—''श्राप जानते है यह कौन हैं ?'' पर बीच ही में उनकी बात काटकर मैंने कहा—''नाम बताने की श्रावश्यकता नहीं। मै इनका एक मित्र हूँ श्रीर इनके साथ श्रानन्द से यात्रा करने वाला सहयात्री हूँ।"

गाड़ी चल पडी। प्लेटमार्म पर चिरपरिचित जयघोष हो रहे थे। दो बैंचो के बीच, मैं श्रीर वह मुसलमान सज्जन एक-दूसरे के श्रामने-सामने खड़े थे। शेष सारे योद्धा श्रपने-श्रपने शिविर में श्रर्थात् बर्थ पर जाकर लेट चुके थे। गाड़ी प्लेटमार्म से बहुन श्रागे बढ़ गई श्रीर श्रोगलेवाड़ी के दियों को हमने पीछे छोड़ दिया; परन्तु मेरे मित्र ने जंजीर नहीं खीची। श्रम्य किसी प्रकार की कोई चेष्टा भी उन्होंने नहीं की श्रीर एक-दो मिनिट में वह ऊपर श्रपनी बर्थ पर जाकर सो रहे। इसके पश्चात् मैं बहुत देर तक इस घटना के बारे में विचार करता हुश्रा, दो बेचो के बीच श्रपनी कमली बिछाये बैटा रहा। श्रगस्त १६४४ में जेल से छूटकर श्राने के पश्चात् कुर्डू वाडी जंकशन पर हुई एक घटना मेरी श्राखों के सामने दौड़ गई। कुर्डू वाडी रंटेशन पर मद्रास मेच खड़ी हुई। उस समय हम लोग डिड्बे में नियत सख्या से कोई दो गुना श्रिषक सख्या मे थे। गाड़ी के

रुकते ही दस-बारह बडर स्त्रिया (पत्थर का काम करने वाली स्त्रिया) अपने साथ छोटे-छोटे बच्चे श्रीर विविध श्राकारो तथा रंगो वाली गठरिया लिए ग्रुन्दर प्रविष्ट हुई ग्रीर उन्होंने हमारे डिब्बे को 'ब्लैक होल' का रूप प्रदान किया । मैंने खिडकी में से बाहर खडे हुए एक सिपाही को बुलाया श्रीर उससे टिकट-कलेक्टर को भेज दैने के लिए कहा । उसने कहा-''काका साहेब, यह स्रापकी प्रजा है, गत दो दिनो से जगह न मिलने के कारण ये वहीं रुके हुए थे, फिर भी स्त्राप चाहते हो तो मैं टिकट-कलेक्टर को बला लाऊँगा।" वह मुभ्ते पहचानता था, यह तो जाहिर ही हो गया. पर साथ ही साथ उसने मेरे कर्तव्य के बारे में इतने मार्मिक शब्दों में संकेत किया कि मेरी श्राप्त खुल गई। मैंने उससे टिकट कलेक्टर को न बुलाने के लिए कहकर तत्काल डिब्बे को सभा-भवन का रूप दिया तथा तत्रस्थ मित्र-मग्दली से निवेदन किया कि वे बारी-बारी से खडे हीं ऋौर स्त्रियों के लिए जगह कर दें। उसे सब ने मान लिया तथा इस प्रकार इम सभी यात्रियो ने भ्रातृभावपूर्वक प्रवास किया । यदि इमने केवल ऋधिकार की ही बुद्धि से काम लिया होता तो उन स्त्रियों को बाहर निकाल दैना मिष्रकल नहीं था। उससे हमारा प्रवास चए। भर एव कराभर ऋधिक सुविधापूर्ण हो गया होता । परन्तु उससे हम एक उच्च कोटि के स्नानन्द से वंचित ही रह गए होते । उस घटना की त्राज की इस घटना से तुलना करते हुए तथा तदुद्भूत अनेक विचार तरंगों से हिल्लोलित होते हुए अंततः मैं उस सेकंड क्लास के डिब्बे की दो बेचों के बीच बिछी हुई ऋपनी कमली पर सो रहा।

प्रातःकाल त्रांख खुलने पर उन यात्रियो में से एक ने त्रपने त्राप मुम्मसे बर्थ पर बैठने की प्रार्थना की तथा त्रात्यन्त नम्र स्वर से मेरा नाम पूछा। त्राव पूरी तरह से पौ फट चुकी थी। डिब्बे में चारों तरफ नजर दौड़ाने से मालूम पड़ा कि उनमे एक मारवाडी जोड़ा यात्रा कर रहा था। उनके ऋतिरिक्त एक मद्रासी ऋौर एक पारसी सज्जन थे। एक हमारे सुसलमान भाई थे तथा छुठे महानुभाव प्रातिविधि के लिये गए हुए हैं ऐसा मालूम हुआ। पारसी ने ही मुक्ते जगह देकर मेरा नाम पूछा था।

मैंने कहा—''नाम से ऋाप क्या कीजियेगा ? ऋापके समान ही मै भी एक यात्री हूँ । समुद्र मे बहती हुई दो लकडियाँ जिस प्रकार एक जगह चली ऋाती है ऋौर दूर हो जाती हैं उसी प्रकार हम भी ऋाध पौन घढे मे एक दूसरे से ऋलग होने वाले है ।"

पारसी ने कहा—"जिस शान्ति एव सभ्यवृत्ति से श्राप कल व्यवहार कर रहे थे उससे प्रतीत होता है कि श्राप कोई बड़े श्रादमी है।"

मेंने कहा—"शांति एवं सभ्यता सदैव बड़ापन के परिचायक होते हैं ऐसी बात नहीं है। ये बाते इतनी सस्ती हैं कि बगैर किसी कीमत के हर कोई व्यक्ति इनको काम में ला सकता है।"

हम लोगों की ये बातें चल ही रही थी कि छुठे सज्जन भी प्रातिविधि में निवृत्त होकर बाहर श्रा गये, उन्होंने तत्काल "काका साहेब, श्राप इधर किधर ?" कहकर मुफ्ते नमस्कार किया।

मैंने कहा-"मै तो कर्हाड से इसी डिब्बे मे हूँ।"

वह सब्जन, जो कर्नाटक के एक बड़े नेता के सुपुत्र थे, बोले— 'श्रच्छा, तब श्रापने मुक्ते कल क्यों नहीं बतलाया ? श्रापको जगह देकर स्वयं नीचे श्रा गया होता मैं।''

उसने वैसा किया होता इसमें मुफ्ते किसी प्रकार का संदेह नहीं था। वत्ती के धुंधले प्रकाश में उसने मुफ्ते पहचाना नहीं यह भी सत्य ही होगा। मैंने कहा—''त् तरुण है, विश्राति की तुफ्ते ऋधिक ऋावश्यकता है। मैं नीचे सोया इसमें मुफ्ते वह नीद नहीं ऋाई, यह बात थोड़े ही है ?"

इसके बाद मैंने सब यात्रियों को बतला दिया कि मैं कौन हूँ। तत्काल सब लोगों ने खेद ब्यक्त करना ख्रारम्भ कर दिया। "ख्रापने ऋपना नाम बतला दिया होता तो ख्रापकी सगित का लाभ हमें प्राप्त हुआ होता। ख्रापने नाम न बतला कर ख्रच्छा नहीं किया।"

पारसी सज्जन ने, जो बेलगाव के एक बहुत बड़े व्यापारी थे तथा बम्बई के एक बड़े नेता के सम्बन्धी थे, मेरे नाम न बताने के विपय में अनेक मर्तबा खेद प्रदर्शित किया। उन्होंने बताया कि बम्बई वाले सज्जन ने उन्हें बतलाया था कि मेरे बारे मे लोगों की राय बहुत अन्छी है। अत में जिस उत्तर को देने अथवा न देने के बारे मे बहुत देर से सोच रहा था उसका उचित समय आया जानकर मैंने उनसे कहा—'मैंने नाम बता दिया होता तो आप लोगों ने मुभे जगह दे दी होती, मेरा सम्मान किया होता। पर सम्मान हुआ होता मेरी पदवी का तथा मेरे प्रतिष्ठित जीवन का, परन्तु मनुष्यता का सम्मान न हुआ होता। आपमें और मुभमे जो बस्तु समान है वह है मानवता। वह मानवता अपमानित हुई। मुभे इसी बात का खेद है।'

पूना स्टेशन त्राया । हम सभी नीचे उतरे । मेरे पास सामान क्या था; एक चमडे की पेटी भर ! उसके उठाने के लिए हिन्दू, मुसलमान त्रीर पारसी सभी मे होड-सी ठन गई । पर मैं किसी को भी इस बात का सम्मान दैने के लिए तैयार न था । सबके 'नमस्कार' मे तथा त्रालेकुम सलाम' में सत्य और सम्यता की विजय किस प्रकार सुखदायी एव चिरस्थायी होती है, इसका विचार करते हुए मैं स्टेशन से बाहर चला गया ।

कबाड़ी बाजार में 'लोकतन्त्र'

ना शहर श्रनेक बातों की तरह श्रपने 'क्बाड़ी बाजार' के लिए भी प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक श्रनुसंधान कार्य से लेकर १९४४ तक के अनेक प्रकार के आदोलनों के लिए पूना की जैसी और जितनी प्रसिद्धि है, लगभग उतनी ही कबाडी बाजार के लिए भी है। सन् १६२४ से १६२५ तक यह कबाडी बाजार हफ्ते में दो मर्तबा शनिवार वाडे के सामने तथा बगल में लगा करता था। आजकल कुछ बरसो से वह मुठा नदी के परली पार लगा करता है। पर इस स्थान-परिवर्तन से उसके महत्त्व में कुछ भी कभी नहीं हुई है। पहले की तरह त्राज भी उसका विविधता से भरा हुआ विचित्र स्वरूप कायम है। मराठी में इसे 'जुना बाजार' कहते हैं। जुना बाजार का ऋर्थ है पुराना बाजार जिसका साधारगतया लोग यही मतलब लेगे कि वहाँ सब पुरानी-धुरानी चीजें ही बिकी के लिए रखी जाती होगी । पर पहले वहाँ कितनी ही नई वस्त्र मी बिक्री के लिए श्राया करती थी। पहले की भाति ही वहाँ बृढे लोग नई पुरानी चस्तुत्रों की खोज में श्राया करते थे, यह सोचकर कि यहाँ सस्ते में मिल जायेंगी।

एक पैसे के लिए एक घरटे तक धिसिंघस करने की अपनी पुरानी आदत अभी उन लोगों ने छोड़ी नहीं, ऐसा नजर आता है। आज भी साधारया-तया उपयोग में लाई गई चीज को थोड़ा-बहुत नया रंग देकर इस बाजार में नई बस्तु के नाम से बेचा जाता है। आज के साहित्यिक लोग भी कम अधिक पैमाने पर यही किया करते हैं, पर उन्हें कोई कुछ नहीं कहता। इसके विपरीत, जो वस्तु नवीन बनाकर छापी जाती है उसे नवीन समभ कर ही उसकी प्रातिष्ठा और प्रशंसा की जाती है। राजनीतिक दोत्र में भी यही होता है। पुरानी-पुरानी गलतियों को ही बार-बार दुहराने का प्रयत्न स्पष्टरूप में दिखाई देता है। तो भी उन गलतियों को नवीन तत्वज्ञान की नवीन प्रमेयों की विचार-सरस्यी कहकर पुकारा जाता है।

पूना के कवाडी वाजार मे अपनी अपीष्ट वस्तुओं को सस्ते भावों में प्राप्त करने में प्रवल सम्भावना रहती है। वचपन से तमाशे के लिए कभी-कभी एकाध चीज खरीदनें के लिए, तथा अनेक बार केवल मनोरंजन के विचार से मैं इस कवाडी बाजार की ओर आकर्षित होता रहा हूं। पूना के प्रत्येक व्यक्ति की आकाचा सामान्यतया यही रहती है कि उसकी ग्रहोपयोगी प्रत्येक वस्तु नई रहे। यह होने पर भी उसकी अनेक आवश्यक-ताओं की पूर्ति इस कवाडी बाजार से ही हुआ करती है। पूना का कबाड़ी बाजार खुला बाजार है, अतः उसकी तुलना बम्बई के चोर बाजार से नहीं की जा सकती। इसका यह अभिप्राय नहीं कि चोरी करके लाई गई वस्तुएं अपना 'कायाकल्प' करवाके यहाँ मिलती ही नहीं, आजकल सारी वस्तुएं अपना 'कायाकल्प' करवाके यहाँ मिलती ही नहीं, आजकल सारी वस्तुएं महगी एव अलभ्य हो गई है। 'देशोद्धार की योजनाओं' को छोड़ कर बाकी कोई भी चीज अपने योग्य प्रमाण में नहीं मिलती। खास करके पुस्तकों के बारे में गत चार पाँच वर्षों से युद्ध के कारण विशेष अड़चन अनुभव होने लगी है। पुस्तके खरीदने की बीमारी मेरी पुरानी है। थोड़े

से पैसे ज़्यादा महस्स होते ही पुस्तकें खरीदने का मेरा यह व्यसन श्रमेक मर्तवा 'ग्रह-मन्त्री' के श्राह्मेप वा विषय बन चुका है।

एक दिन आज हमारे एक पुराने पच्चकार (मविक्कल) ने कई बरस पहले काम के प्रतिदानस्वरूप श्रप्रत्याशित रूप मे कुछ रकम लाकर हमें दी । अनुमानपत्रक (बजट) के सम्बन्ध मे मैंने स्वयं एक पुस्तक लिख रखी है पर ऋपने घर के ऋनुमानपत्रक के 'ऋाय' और 'ब्यय' दोनो का ठीक-ठीक व्यौरा करना ग्राज तक मुक्ते नहीं ग्राया। प्रत्याशित वस्तु तो न श्रावे पर श्रप्रत्याशित श्रा जाय इस बात का जैसा मेरा श्रन्भव है वैसा ही यह ऋतुभव है कि प्रत्याशित वस्त तो सारी की सारी खच हो जाती है श्रीर श्रप्रत्याशित वस्त बढती ही चली जाती है। लढमी स्थभावतः चंचल है: ग्रातः उसके स्वभाव के विरुद्ध उसे स्थिर ग्राथवा स्थायी करने का प्रयत्न मैंने कभी नहीं किया। यह हो सकता है कि मेरे लिए वैसा करना संभव भी न हो । श्रतः जब उपयुक्त श्रप्रत्याशित रकम, जो कुछ छोटी-मोटी नहीं थी. हाथ में ब्राई तब पहले पहल में 'इंटरनेशनल पुस्तक संग्रहालय' मे गया । जब वहाँ ऋपनी ऋभीष्ट पुस्तके न मिली तो यह सोचकर कि श्रव किसी न किसी दिशा में जाना चाहिए मैं एटीफीट रोड से नये पुल की श्रोर चल पड़ा। श्रब मैं 'काग्रेस भवन' के सामने से गुजर रहा था तब रास्ते पर लोगो की भीड़ को देखकर खयाल आया कि श्याज तो कबाडी बाजार का दिन है त्यौर तत्काल जैसे किसी तांगे वाले का घोड़ा त्रादत की वजह से त्रन।यास किसी रास्ते की त्रोर चल पडता है मेरे पैर भी कबाडी बाजार के प्रदेश की श्रोर मुड़ गये। इसमें संदेह नहीं कि मैं बहुत दिनों के बाद त्राज इस कवाड़ी बाजार की श्रोर जा रहा थाः तथापि अपरिचित होते हए भी सारे दुकानदार मेरा खागत कर रहे थे। इस स्वागत के कारण उत्पन्न होने वाला 'ग्रहंकार' श्रपने वास्तविक

म्बरूप पर ब्राने से पहले ही विलीन हो गया, क्योंकि जो लोग मुक्ते पास बला रहे थे वे मुक्ते ऋपना नेता समभकर नहीं बल्कि एक ग्राहक के नाते बुला रहे थे. यह बात शीघ ही मेरे ध्यान मे आगई। बैठने की नयी काठ की चौकी से लेकर सोने के मसहरीदार पलंग तक अनेक वस्तुत्रों के विकेता हावभावपूर्वक चिल्ला रहे थे। चिथडो को सीकर तय्यार किये हुए साबत कपडे बेचनेवाले लोग उसी प्रकार के कपडे पहनकर ऋपने उत्पादन के साथ मानो 'ससंगति' प्रदर्शित कर रहे थे। गालो पर कहीं-कही बालो के गुच्छोवाला 'इसन ग्रली' बोहरी ट्रटी-फूटी बाल्टी से लेकर बिल्लौरी श्राईने तक की सर्वविसंगत वस्तुत्रों का समन्वय करके 'सर्वोदय' वाद का प्रयोग (एक्सपेरिमेट) करके दिखा रहा था। इस बाजार की गंदगी श्रौर स्वच्छता स्वयं इस बात का पक्का सबूत पेश कर रहे थे कि उस जगह की व्यवस्था का भार म्युनिसिपैलिटी पर है। एक ग्रोर मोटरो ग्रौर दूसरी श्रीर जानवरो के बाजार की योजना करके पूना की नगरपालिका ने श्रपने रचना-कौशल्य से बडी खूबी के साथ यह जतलाया था कि मनुष्य यंत्रों की ऋपेचा सजीव विन्तु जानवरों से भिन्न है। इस कबाड़ी बाजार में मानवीय गृह-प्रपंच के लिए स्त्रावश्यक 'साहित्य' (मराठी में सामग्री के श्रर्थ मे भी साहित्य शब्द का प्रयोग होता है) के साथ-साथ ज्ञान 'साहित्य' के साधन ऋर्यात प्रनथ भी थे।

कबाड़ी बाजार की पुस्तकें

स्वभावतः ही मेरा चित्त इस अन्य-मंडार की श्रोर श्राकृष्ट हुन्ना। मैंने इस कवाड़ी बाजार से पुस्तके कभी खरीदी ही नहीं सो बात नहीं, पर ऐसे प्रसंग बहुत कम श्राये हैं। पर श्राज मुक्ते न मालूम क्या हुन्ना कि मेरे मन में विचार श्राया कि श्राज वहाँ से कुछ न कुछ खरीदना जरूर चाहिए श्रीर मैं पुस्तकों की ढेरी में से एक-एक पुस्तक उठाकर देखने

लगा। बाबिलोन शहर में जिस प्रकार अनेक भाषा बोलने वाले लोग रहा करते थे और एक-दूसरे की भाषा न समक्षते हुए भी परस्पर व्यवहार किया करते थे, वैसी ही कुछ अवस्था यहाँ पर भी थी। सस्कृत, मराठी, उर्दू, बगाली, अप्रेजी, फेंच इत्यादि नाना भाषाओं की पुस्तके पाडोबाजी की दूकान में मिल-जुलकर एक ही ढेरी में पड़ी हुई थी। शंकराचार्यजी के ब्रह्मसूत्र से लेकर पट्ठे बाब्र्रावजी की लावनी तक के विषयों वाले अन्थ वहाँ दिखाई दे रहे थे। परमेश्वर जैसे दिक्कालातीत है, तदवत ही मेरे सामने की ढेरी भी दिक्कालातीत भासित होती थी। विभिन्न देशों एवं कालों के अन्थकारों द्वारा लिखे अन्थ यहाँ एक ही राशि में समन्वित थे। उस राशि की पुस्तकों को टटोलते-टटोलते मेरी दृष्टि एक अथ पर गई और एकदम बिजली का भटका-सा लगा।

पुस्तक मांगकर लेजानेवाले वकील साहव!

सन् १६३८ में 'म्युनिक' की सिंध हुई। उन दिनां यूरोप के राजनीतिक चेत्र में 'एडवर्ड वेनेस' नामक एक व्यक्ति बहुत प्रसिद्ध हुए। चेकोस्लो-वाकिया देश का यह नीतिपंडित म्युनिक की घटना से बहुत बरस पहले से सारे यूरोप को नात्सीवाद से बचे रहने की निरन्तर चेतावनी दे रहा था। अन्तः करण से तथा विचारों से यदि किसी को सच्चा प्रजातन्त्रवादी कहा जा सकता है तो वह यही नीतिपंडित था। गत युद्ध के अनन्तर चेकोस्लो-वाकिया राष्ट्र कितने अल्पकाल में उन्नत हुआ, इसका वर्णन पडित नेहरू ने कुत्रहलपूर्वक किया है। पिछले युद्ध के पश्चात् सबको यही प्रतीत होता था कि यह देश दुरैंव के चक्र से निकलकर अब मुस्थिति के मार्ग पर चल पड़ा है। एक ही पीढ़ी में प्राग नगर के नागरिकों को तीन राज्यों का नागरिक बनने का सम्मान प्राप्त हुआ था। यूरोप के राजनीतिक चेत्र के इस पादापद के समाप्त हो चुकने के बाद यह देश बार्साई के अनन्तर

स्वयंशासित एव स्वयंकर् त्ववान हो गया है ऐसा ही सारे जग को लगता था। १६२० से १६३७-३८ तक चेकोस्लोवाकिया ने जो प्रगति की श्रौर विशेषतः लोकतन्त्र पद्धित को सही श्रथों में सफल करके दिखाया उनके सम्बन्ध में सर्वत्र कुत्इल व्यक्त किया जाता था। इस महान् कर् त्व का श्रिषकाश श्रेय श्री बेनेस को था। उनका नाम सारे जग को पहले ही से जात था। चैम्बरलेन ने म्युनिच सिंघ करके चेकोस्लोव। किया पर जो श्रम्याय किया था, उसके सम्बन्ध में बेनेस ने जो भाषण दिया था वह इस प्रकार था:—

''यूरोप की शांति के लिए आज हम आपना बलिदान कर रहे हैं। इस र्बालदान से यदि हमें यह विश्वास होता कि यूरोप की शांति स्रजरस्रमर रहने वाली है, तो इससे भी ऋनेक गुना ऋधिक बलिदान करने मे हमे ऋत्यधिक स्नानन्द हुस्रा होता । हमारे इस बिलदान से तो शाति नहीं प्रत्यत युद्ध ही की परम्परा कायम रहेगी। तथापि लोगो को शातिपूर्वक धीरज के साथ अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए श्रीर लोकतात्रिक का स्वातन्त्र्य सरद्धण करना चाहिए । त्राज न सही, कल तो निश्चित ही लोकतन्त्र की जीत होगी।" इस भाषण के सुनने के बाद उसी समय मैंने उसकी लिखी पुस्तक 'लोकतन्त्र' (डमोकसी) खरीदने का निश्चय किया श्रीर बम्बई जाकर खरीदकर ले भी श्राया। इस पुस्तक के लाने के बाद दूसरे या तीसरे दिन पूना के एक वकील साहब किसी काम से मेरे पास श्राये श्रीर वह पुस्तक पढ़ने के लिए मांग कर ले गये। पुस्तक कोई ऐसी वस्तु नहीं कि उसे हमेशा ऋपने साथ ही रखा जाय। यदि उसको पढने से किसी अन्य व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि होती हो तो किसी दूसरे को उसके दे देने से ऋपना क्या बिगड़ता है ? ज्ञान-दान श्रेष्ठ वस्त है न ? सभी पुस्तकें तो ऐसी नहीं रहतीं कि उन्हें सोने की तरह सभाल कर रखा जाय।

बेकन के कथनानुसार, कुछ पुस्तके एक श्रोर को रखने की होती हैं कुछ पद्कर मनन करने की होती हैं तथा कुछ ऐसी होती हैं जिन्हे अपना सदा का साथी, मार्गदर्शक समभक्तर पास रखना चाहिए। किसी भी प्रकार की क्यों न हो, ऋर्थशास्त्र के शब्दों में वे 'बहुपयोगी' होती हैं। उनका किसी एक के द्वारा, किंवा एक मर्तवा उन्मोग कर लिया जाय तो भी उनकी उपनोगिता खत्म नहीं होती। ऐसी श्रवस्था में श्रपने पास की ग्रंथ-सपत्ति को अनुपत्रक्त दशा मे रखना असार ेन है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। पर पदने के लिए पुस्तके ऋोरों को दे दें तो वे फिर वापस नहीं श्राती । संस्कृत का यह संभाषित 'पर हस्तगतं गतम ' ही सही साबित होता है। जो वदील साहब पुस्तक माग दर ले गये थे वह कोई राजनीति के श्रध्ययन करने वाले नहीं थे। राज्य-शास्त्र में विशेष श्रिमिरुचि भी उनकी नहीं थी। परन्त समाज में ऐसे अनेक व्यक्ति होते हैं जो किसी के घर में कोई नई पुस्तक देखकर उसकी इच्छा करने लगते हैं। पुस्तको को वास्त-विक सम्पत्ति समभाने वाले लोग इम लोगो मे बहुत थोड़े है। अपने सामर्थ्य से बाहर खर्च करके घर की सजावट का सामान वे लोग एकत्र करेंगे पर थोडी किंतु चुनी हुई पुस्तको का सग्रह करके अपने घर को और मन को सजाने का प्रयत्न वे बहुत कम करेंगे। तथापि कुछ लोगो की श्रादत होती है कि दूसरे के पास कोई श्राच्छी सी किताब नजर श्राई कि वे तत्काल माग बैठेगे। पुस्तक वे लोग ले जायेंगे, लेजाकर खो बैठेगे, श्रीर किसी ने उनसे वह वापिस माग ली तो गुस्से के मारे उनकी त्यौरियां चढ जायेगी। यह इतिहास तो सब जानते ही है। मुक्ते यह अनुभव पहले श्रनेक बार हो चुका था तो भी उक्त महानुभाव के उत्साह को देख कर मैंने उन्हे वह पुस्तक दे दी।

मुक्ते आघात क्यों लगा ?

ठीक सात वर्ष पश्चात वह पुस्तक पाडोबाजी की उल्लिखित पुस्तको की राशि में मुक्ते दिखाई दी। इन सात वर्षों में जगत में क्या-क्या हो गया इसका चित्रपट उस पुस्तक के हाथ मे ख्राते ही मेरी ब्रॉखो के सामने ब्रा गया। यूरोप के छोटे-बड़े लोकतन्त्रीय तथा अन्य प्रकार के राष्ट्र नात्सी लोगों के पैरो के नीचे कुचले हुए नजर श्राये। इतना ही क्यो, जो लोग न्नपने को लोकतत्रीय कहते है उन देशों में भी हमने देखा कि समाज का जीवन नात्सी राज्यपद्वति की ऋपेचा कही ऋधिक जकडा हुआ है। मेरी श्राखों के सामने वह दृश्य श्राया, जहाँ ईमानदारी से किये गये विरोध को लोगो ने राज्यद्रोह की चौखट मे बिठा रखा है। सहिष्णुता श्रौर सौजन्य के जिन सद्गुणो पर लोकतन्त्र ऋध्याश्रित है, उनके मृत्यगीतो को इन कानों ने सुना । लोकतन्त्र का ऋभिपाय है शासित व्यक्तियों की सम्मति से चलने वाला शासन, पर यह सिद्धात नाममात्र को बचा दिखाई दिया। एक पच का स्वेच्छाचारी शासन ही लोकतत्र है, ऐसा ऋर्थ नवीन भाष्य-कारा द्वारा उपवर्णित मैने सुना। जिन दलो ने, जिन नेतास्रो ने, जिन राष्ट्रों ने स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध त्र्यावाज़ उठाई उन लोगो को स्वेच्छाचारी शासन के पृष्ठपोषक कहकर उनकी जुगुप्सा की गई, उन्हे जेल में डाल दिया गया। इन सात बरसों में यहा तक नौवत ऋाई कि श्रसत्य भी सत्य सिद्ध होने लगा । देशभक्ति गुनाह माना गया श्रौर स्वातच्य का अभिप्राय बड़े देश की गुलामी माना जाने लगा। जो स्वातत्र्य नये विचारों की जननी, श्रभ्युदय की कामधेनु एवं श्रस्मिता का गौरव था स्त्राज उसके स्त्रर्थ, शून्य साबित होने तक की नौबत स्त्रा गई। श्राज सर्वत्र नियमन श्रोर नियत्रण का बाज़ार गरम है, व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं प्रभाव प्रतिक्रण कीण होता जा रहा है। व्यक्ति के महत्व का स्वय ही त्र्याज के जगत मे वृद्धि है। व्यक्ति के गौरव को स्थिर रखकर समाज की प्रतिष्ठा एवं पराकम को वृद्धिगत करने वाला सगठन ही लोकतंत्र है, इसे मजूर करने के लिए त्र्याज कोई तैयार नहीं। इन गत सात वर्षों मे कार्यच्चमता के नाम पर लोकतत्र को पुराना त्र्यादर्श मान लिया गया है।

श्रीर इन सब घटनात्रों के प्रतिबिम्ब के तौर पर ही कदाचित यह लोकतत्र की पुस्तक इस कवाडी बाजार में बिकी के लिए स्राकर पडी हुई थी ! श्रीर दु:ख की बात यह थी कि स्वामित्व की भावना से उस पर जो मेरा नाम लिखा हुन्रा था, उसे किसी ने ब्रानेक लकीर खीचकर काटने का प्रयत्न किया था। मेरे नाम के नीचे और भी दो-चार नाम थे, जिन्हें उसी तरह से काट रखा था, पर मैने उन्हें पढ़ने की भी कोशिश नहीं की। उस कटे हुए नाम वाले पन्ने को देखकर विचारो का बवडर इतने प्रबल वेग से उठा कि वहाँ पर अधिक देर तक बैठ कर यह पता चलाने की इच्छा भी नहीं हुई कि वह पुस्तक वहाँ कैसे ऋाई। जहाँ लोकनंत्र जैसी वस्तु ही जीर्गा श्रीर पुरातन सावित हो गई, वहाँ इस तुद्र सी वस्तु को इतना महत्व क्यो दिया जाय ? मैं उठ खडा हुन्ना । मेर इर्द-गिद सारी जीर्ग त्रौर पुरानी वस्तुए ऋस्त-व्यस्त ऋवस्था मे पड़ी हुई थी इसमे संदेह नहीं, पर मेरे सामने नदी वेग से बही जा रही थी। नये पानी के प्रवाह की कलकल ध्वनि कानो मे त्रा रही थी। जीवन भी एक प्रवाह है। कौन कह सकता है कि इस नवीन प्रवाह में से नवीन चैतन्य की उत्पत्ति नहीं होगी ? श्रार इसी मंगल कल्पना में तन्मय होता हुन्ना मै ऋपने घर वापस श्रा गया।

पड़ोस में चित्रशाला है न ?

केल्यानें देशाटन, पंडित मैत्री, समेत संचार, शास्त्रग्रंथ विलोकन, मनुजा! चातुर्य येतसे फार।

र्राह श्लोक मराठी की क्रमिक पुस्तको मे त्र्याया करता है। महाराष्ट्र का कदाचित ही कोई ऐसा शिच्चित व्यक्ति मिले, जिसने यह श्लोक न पढ़ा हो । इसका अर्थ है :-देशाटन, पंडितजनों से मित्रता, सभा आदि में जाने-त्राने, शास्त्रप्रनथ त्रादि का विलोकन करने से मनुष्य मे चतुरता श्रा जाती है। श्रवलोकन तथा श्रध्ययन के लिए, जनता के दुःख एवं दारिद्रय के निरीक्षण के लिए, अज्ञान तथा अनाडीपन का पता चलाने के लिए इस हतभाग्य देश मे अपने प्रान्त से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। किबहुना, किसी भी गांव मे, िकसी भी गली और चौराहे पर आप चले जाइये, ऋनुभव का यह प्रन्थ सबके परिदर्शन के लिए सर्वथा खुला हुआ रखा है। इसका परिदर्शन करना मेरा एक व्यवसाय ही हो गया है। स्वयं कोई व्यक्ति श्रपनी दु:खगाथा श्राकर सुनाये उसकी श्रपेचा किसी प्रसंग में सहज रूप से उन दु.खो का विदित होना श्रिधक स्वारस्यपूर्ण होता है। श्रतः मैं श्रोर जेधे, जब भी कभी हमे मौका मिलता है, किसी शहर में, किसी गांव में, बस-स्टैएड श्रथवा स्टेशन पर के मैले-कुचैले भिनभिन करने वाले छोटे-बड़े उपाहारगृह मे चले जाते हैं। एक किनारे बैटकर उस जगह जमा हुए लोगो की बातचीत सुनना तथा कभी श्रपना परिचय न देते हुए लोककल्याण से संबन्धित प्रश्नो पर चर्चा करना भी हमारा एक उपक्रम रहता है।

कुछ महीने पहले की बात है। भानु विलास थियेटर में किसी कलो-पासक मंडली ने एक नाटक किसी एक संस्था की सहारता के निमित्त करने का निश्चय किया था। स्त्रोर ऐसे ''मत्कार्य" के लिए किसी न किसी अध्यक्त की आवश्यकता तो रहती ही है, सो यह ''बहुमान'' इस बार मेरे हिस्से मे श्राया था। उसका करण यह नहीं था कि मैं कोई बडा साहित्यिक, गायक त्राथवा नाटककार हूं, प्रत्यच्च यह था कि मैं थियेटर के मालिक का मित्र हूँ। कलोपासको ने इस चुनाव में भी व्यवहार ही साधा था। कारण थियेटर मुफ्त हासिल करने की उनकी आंतरिक आकाचा थी। यह मैं तनी जान गया था। नाटक के प्रारम्भ होने मे ऋभी देश थी, मगर हम पहले ही स्राकर धमक गए थे। यह जानकर कि नाटक के स्रारम्भ होने मे स्रामी विलम्ब है. सदाशिवपेठ के हौद से होकर गुजरने वाले गस्ते पर स्थित एक उपाहारगृह मे मैं चला गया। होटल का मालिक अवश्य ही कोई उच-वर्णीय हिन्दू होगा, क्योंकि प्रथम दर्शन ही मे वीर सावरकर का चित्र टगा हुत्रा नजर ऋाया। चूँ कि यह होटल पूना के पश्चिम भाग मे ऋवस्थित था, इसिलए इसका नाम संस्कृत प्रचुर होना ही था। इतना ही क्यो, सामान्य मनुष्य के लिए उसके ऋर्यं का ज्ञान होना भी कठिन था। संस्कृत से थोडा बहुत परिचय होने के कारण मैं समक्त सका कि यह एक उपाहार-गृह है। मैं उसके भीतर चला गया। मै तो गाधीटोपी वाला था ही, मेरे साथ के अन्य दो सज्जन भी गांधीटोपी ही मे थे। कदाचित् गली के नजदीक वाले ने हमे पहचान लिया हो, किवा हमें कुछ असाधारण आहक समभ्रकर उनकी गतिविधि में कुछ अस्वस्थता आ गई। हमने जानबूभकर कोने वाली जगह अपने लिए पसन्द की। उस स्थान में पदार्थ तैयार करने की जगह हमें अच्छी तरह नजर आती थी।

चाय वगैरा देने वाला लडका जब हमारे समीप स्राया, तब हमने उससे श्रपने में से प्रत्येक के लिए उसे चाय का एक-एक प्याला लाने के लिए कहा. जिसके बारे में किये गए विज्ञापन में लिखा है कि "जो उत्साह कारक तो है पर उन्मादकारक नहीं, जो ग्रीन्मऋतु में ठंडक ग्रार शरद ऋतु मे गर्मा लाती है, जिसके पीने से मलेरिया जैसे रोग दूर भागते हैं श्रीर स्वास्थ्य समीप दौडता चला श्राता है।" श्रीर मै उस लडके की श्रीर देखने लगा। उसके शरीर पर एक ऐसा कमीज था जिसने निश्चय किया हुआ था कि चाहे जान चली जाय पर धांबी के घर नहीं जायगा। मूलतः उस कमीज का क्या रंग रहा होगा, इसका पता लगाना भी एक शोध का ही काम था। जिस प्रकार राजनीतिज्ञ लोगों की आलोचनाओं की परवा नहीं करता, उसी प्रकार वह भी सब प्रकार के मलो की परवाह नहीं करता था। उसने जो निकर पहनी हुई थी, वह चलने-फिरने की सुविधा के लिए नहीं प्रत्युत मालिक के खर्चें की सुविधा के लिए बनाई गई थी। मिनट-मिनट में कधे से हाथ में श्रीर हाथ से कंधे पर जाने वाले उसके कपड़े का तो वर्णन करना ही कठिन है। जब अन्दर से एक पर एक कप रखकर वह हमारे लिए चाय बनाकर ला रहा था तब मेरी दृष्टि लगातार उसी त्रोर थी। साथ ही त्रान्दर के कमरे की सारी त्रावस्था का भी ज्ञान हो रहा था। वहाँ का ऋंधेरा, वहा से निकलने वाला धूऋा, चारो तरफ बिखरे हुए छिलके, वहाँ काम करने वालो की वेषभूषा, शरीर पर बहने वाली

पर्धीने की धाराएं ऋादि देखने पर एक बार मन मे यह विचार ऋाया कि वहाँ से उठ कर चले जाये। लडके ने चाय लाकर हमारी मेज पर रखी। मैने उससे उसका नाम पूछा। नाम के पश्चात् उसकी उम्र के बार मे प्रश्न किया । उसका वेतन ऋौर उसका ऋता-पता पूछ लिया । जब मालिक ने देखा कि वह हमेशा से कुछ ज्यादा समय तक हमारे पास खड़ा है तब स्वभावतः मालिक का भी ध्यान हमारी श्रोर खिंचा । मालिक ने यह देखकर कि मैं किसी किस्म की पूछताछ कर रहा हूं, एक दूसरे नौकर को, जिसकी उम्र कोई पच्चीस वरस की होगी, हमारे पास भेजकर यह कोशिश की कि किसी तरह वह लडका वहाँ से हट जाय। उस लडके की उम्र दस बरस की थी तथा उसने जो जानकारी हमे दी थी उसके मुताविक उसे भोजन के त्रातिरिक्त महीने में छः रुपये मिला करते थे। रहने का इन्तजाम मालिक ने ग्रपने यहाँ ही कर रखा था। एक वडा हाल था. उसी में दस-वारह लड़के स्त्रोर ऋन्य नौकर सो जाया करते थे। भोजन की व्यवस्था के बारे में उसने जो जानकारी दो उससे यह ऋतुमान निकाला जा सकता था कि होटल में बचने वाले सारे पदार्थ उन्हें दे दिये जाते होगे।

"श्रच्छा, यह वता, सबेरे से लेकर तेरा क्या कार्यक्रम रहता है ?" मैंने उससे पूछा। "हम सबेरे छः वजे उठते है।" श्रीर इसके बाद उसने जो दिनचर्या बतलाई उसमे तथा जेल के 'क' वग के कैदियों की दिनचर्या में मुक्ते कहीं भी श्रन्तर नहीं नज़र श्राया। उलटे जेल में साक्त के छः बजे काम समाप्त हो जाता है श्रीर यहाँ रात के नौ बजे तक तो काम रहता ही है पर पुलिस वालों की मालिक पर कृपा रहे तो उसके पश्चात् भी दो-तीन घंटों के लिए काम चालू रह सकता है। श्राहकों की श्रनुपस्थिति ही उनका विश्रातिकाल—यही बस उनके लिए विश्राति का कायदा था, ऐसा प्रतीत हुआ। इस उपाहारगृह में दस से अधिक आदमी काम करते थे, तथापि वहाँ काम करने वालों के काम के घटों के ऊपर तथा श्रमिकों की विश्राति के समय के ऊपर सरकार का कुछ भी नियन्त्रण नहीं नज़र आता था।

मेरे पूछुताछु करने से मालिक नाराज़ हो रहा था, तो मां मैंने ऋपनी पूछताछ उसी प्रकार जारी रखी। जो नौकर उस लड़के को वहाँ से जाने के लिए कह रहा था उससे भी मैंने पूछना-ताछना शुरू कर दिया। ''होटल की पूछताछ के लिए कोई स्त्राया करता है क्या !' मैंने उन दोनों नौकरों से पूछा। कोई नहीं ब्राता" ऐसा उत्तर मिला। "तुम नौकरो को कितना काम करना पडता है तथा क्या काम करना पडता है, इस बात का पता चलाने के लिए कोई स्त्राता है क्या ?" इसका भी 'नहीं" उत्तर मिला। ' तुम लोगो की कभी कोई सभा त्रादि हुत्रा करती है ! तुम्हारा कोई सघ बना हुआ है क्या ?'' मैंने पूछा। मेरे इन दोनो प्रश्नो का बोध उन्हें नहीं हुन्रा। बड़े नौकर ने बतलाया, संघ या सभा क्या वस्तु है इसका उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है। इसपर सहज ही मैंने उनकी पढ़ाई-लिखाई के बारे में सवाल किया। बड़े लड़के ने बताया कि उसे मराठी लिखना-पद्ना त्राता है। पर त्र्राधिक पूछने से मालूम पड़ा कि वह कुछ समय पूर्व ही त्राता था, ऐसा उसके कहने का ऋर्थ है। इस समय उसका ज्ञान इस्ताचर करने से ऋधिक उसकी सहायता करने के लिए तैयार नहीं था। उसकी साच्चरता इस्ताच्चर की परिवन्ध रेखा को पार करके आगे बढने का सहस नहीं कर सकती थी। उसकी दुनिया उपाहार-गृह तथा श्राठ-दस दिन मे एक दफा दैखने को मिलने वाला सिनेमा इतने ही में परिसीमित था। हम जिस स्थिति मे हैं उससे ऋधिक ऋपने को होना चाहिए यह ऋम्युदय की कामना ही उसके भीतर नही थी। दसरों के भाग्य की तुलना करके अपने घोड़े को आगे दौड़ाने की तीव लालसा ही उसने सदा के लिए विज्ञुत कर रखो थी। सबेरे उठकर संध्याकाल तक, किंबहुना रात के दस-ग्यारह बजे तक, चाय का प्याला और रकाबी घोते रहना अथवा कपड़ा हाथ में लेकर मेज साफ करते रहना यह उनका अव्याहत गित से चलने वाला कार्यक्रम किसी स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के कार्यक्रम के समान चलता रहता था। वह जिस किस्म की जिन्दगी बसर कर रहा था वह उसे असहा प्रतीत होती हो ऐसा भी नहीं लगता था। जीवन का ब्यापक हेतु क्या है, इसका ज्ञान तो भला उस बेचारे को कहाँ से हो सकता था ! द्विपाद होने के कारण ही उसे मनुष्य की पदवी प्राप्त थी, ऐसा कहना पड़ेगा। वह इस अवस्था मे, अज्ञानान्धकार मे, पड़ा रहे इस बात से सुभे क्लेश तो हो ही रहा था, पर इससे भी अधिक क्लेश भुभे तब हुआ जब मैं उस छोटे लड़के की श्रोर सुड़ा।

' तुभी कुछ लिखना-पढना त्राता है क्या ?'' ''नहीं।"

'त् पाठशाला मे जाना पसन्द करेगा १'' वह लडका ऋपने मालिक के मुॅह की ऋोर देखने लगा। "त् यहाँ कैसे ऋाया १"

"कुछ महीने पहले मेरे मा-बाप गुजर गये, मेरे चाचा ने मुक्ते घर से निकाल दिया, ऋतः ऋपने गांव के एक ऋादमी के साथ मैं यहाँ चला ऋाया, सो उसने मुक्ते लाकर यहाँ होटल में रख दिया।"

''श्रच्छा, श्रगर मैं तेरी फीस का इतजाम कररू श्रौर कितावें ला दूं तो तूपहेगा रे या तुम्हे जन्मभर इसी प्रकार प्याला-स्काबी धोते रहना ही श्रच्छा लगेगा रे'

इसपर फिर लड़का ऋपने मालिक के चेहरे की ऋोर देखने लगा।

मैंने उस लड़के से कहा, ''इसमें मालिक का क्या सम्बन्ध है ? तुमें अगर पाठशाला में जाना ही हो तो मालिक तुमें दो-तोन घटे की छुटी तो दे ही सकेगा, अगर अगर उसने वैसा नहीं किया तो मैं उसे वैसा करने के लिए मजबूर करू गा। तो बता, हे तेरी तैयारी शाला में जाने की ?"

"हा" उसने उत्तर दिया ।

"तू कभी पाठशाला में गया है ?"

''नही ।''

''तो, यहाँ सबसे नजदीक की शाला कौनसी है ?'' मैंने पूछा । ''नक्कड़ पर चित्रशाला है न।''

यह उत्तर सुनते ही मैं तो अवाक् ही रह गया । अज्ञान की दशा पूना जैसी प्रगतिप्रिय एवं सुविद्य नगरी में इस सीमा तक चली जाय यह अत्यन्त खेद एव आश्चर्य की वस्तु है । पूना में विद्या की परीचा होती है, ऐसी प्रसिद्धि है। यहाँ के कार्यकर्ता कहते हैं कि इस नगर में सार्वित्रक निःशुल्क प्राथमिक शिच्चण की व्यवस्था होनी चाहिए । पूना का वर्णन एक साहित्यिक ने विद्यार्थी निर्माण करने की उद्योगनगरी के रूप में किया है। ऐसी अवस्था में पूना में इतना अधिक अज्ञान दिखाई दे, पूना के सुशिच्चित भाग की यह अवस्था रहे, यह सचमुच पूना के सभी पच्चों के नेताओं के लिए लज्जास्पद है। इस देश में अज्ञान का निवास इसलिए है क्योंकि यहा विदेशी शासन है यह कहना सर्वाश में सत्य नहीं है। दारिद्ध और अज्ञान इस देश के दो महान् शत्रु है। उनमें से अज्ञान का निःपात करने के लिए जितना यल किया जाना चाहिए उतना यल उच्चर्वण के लोगो ने यथार्थ में नहीं किया है। विद्या को पू जी का रूप प्रदान करके उसे किन्हीं विविद्धित वर्गों की ही थाती बनाये रखने का प्रयत्न अग्राज तक किया जाता रहा है। और उस वर्ग के भी सब लोगो

को विद्या नहीं मिल सकी। जिस देश में केवल आठ प्रतिशत लोग भी शिच्चित न हो, उस देश का जीवन निरादशं, निष्क्रय एव निरुत्साह बना रहे तो उसमें आश्चर्य की कौन बात हैं। विद्या ही से तो श्रेष्ठता प्राप्त हुआ करती है। वह विद्या-रूप चैतन्य यींद राष्ट्र को प्राप्त नहीं होता तो राष्ट्र प्रगतिविमुख ही रहेगा, इसमें संदेह नहीं।

पूना में, वह भी सदाशिव पेठ में, वह भी सदाशिव पेठ के हैंदि कें नजदीक जिसके बारे में दावा किया जाता है कि वहा सरस्वती का निवास है, एक उच्चवर्गीय लडका यह पूछने पर कि पास में कौनसी शाला है, उत्तर देते हुए कहे कि 'वित्रशाला है है न'' इसमें विडम्बना तो हुई है पर इससे समाज की वस्तुस्थिति पर भी प्रकाश पडता है।

(*चित्रशाला पाठशाला नहीं एक ख्यात मुद्रणालय है ।)

मेरी प्रथम और अन्तिम चोरी

रम्य वस्तुत्रों को देखकर श्रौर मधुर स्वरों को सुनकर मनुष्य का मन उत्सुकता से भर जाता है। श्रन्य जन्मों की न भी सही, भूतकाल की घटनाए तो श्रवश्य ही स्मृत हो जाती है। भूतकाल की इन स्मृतियों में से कुछ में खुशी भरी रहती है श्रौर कुछ में दर्द। कभी केवल घटनाश्रों की याद ही नहीं श्राती बल्कि उनकी सारी तसवीर श्रांखों के सामने जीवित श्रौर जागरित रूप में श्राकर खड़ी हो जाती है तथा ऐसा महसूस होने लगता है कि हम साचात् उन घटनाश्रों को श्रनुभव कर रहे हैं। इस श्रनुभवावस्था में, वस्तु सृष्टि में भले ही न हो पर श्रानी कल्पनासृष्टि में, हम उन्हीं-उन्हीं भूलों को तथा व्यवहारों को दुहर,ने लग जाते हैं।

विचारशास्त्र का कहना है कि साधम्यं श्रोर वैधम्यं द्वारा मानवीय मन को चालना मिला करती है। ब्रह्मचारी को देखते ही गृहस्थाश्रमी मनुष्य की सृष्टि श्राकों के श्रागे श्राकर खडी हो जाती है। स्ती पर चढ़ने वाले देशमक्त का बृत्तान्त पढ़ते ही देशद्रोही मनुष्य के कृष्णकृत्य नज़र के सामने श्रा जाते हैं। हसने वाले बच्चे को देखते ही फलो की शोभा दीखने लग जाती है। इसी प्रकार सुहास्य वदन को देखते ही किन्मन को कमल का भास होता है। जो पार्थिव दृश्य हम देखते है उनका प्रतिबिब विचार-सृष्टि पर पड़ता है और तत्सदृश घटनाएं स्मृत हो आती हैं। मन के किसी दूरस्थ कोगा में सगृहीत स्मृतिप्रसग ऐसे ही किन्ही निमित्तों के कारण जागरित होते है। छिपे हुए अथवा दबाकर रखे हुए आनन्द, लज्जा अथवा शोक के काष्ट्रप्राय हुए वर्त्तनकमों को मानवीय मन इन अवस्थाओं में पर्झाठत करता है, उन्हें प्रासादिक करता है तथा पर्याप्तकाल तक उनमें रमता रहता है। आनन्द की स्मृति तो आनन्द देती ही है; पर दुःख ओर लज्जा की स्मृतियाँ भी कालातर में अल्पाधिक मात्रा में मन को सुखी बनाया करती है। ऐसा क्यों होता है, अथवा क्यों हो, यह कहना कठिन है, पर ऐसा होता है, यह अवश्य सत्य है।

स्वयमेव सपद

इस प्रकार की एक विलच्चण तथा थोडी विमनस्कता उत्पन्न करने वाली घटना का मैने हाल ही मे अनुभव प्राप्त किया है। बम्बई सरकार ने जेलों मे सुधार करने के उपाय सुफाने के लिए एक समिति नियुक्त की थी. उसका एक 'सम्माननीय सदस्य' मै भी था। इस किस्म की समिति मे काम करने की पूरी पात्रता सुफमे है, ऐसा यदि मैं कहूं तो मेरी यह आत्मश्लाधा अवश्य ही चम्य साबित होगी। तीन प्रान्तों की कुल जमा दस-ग्यारह जेलों मे मैने छः बरस गुजारे है, ख्रतः सुफ्ते ऐसे जीवन का 'विशेष अनुभव' है इस बारे मे किसी को सदेह नहीं करना चाहिए। जेलों में रहते हुए अर्माष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए किन उपायों का अवलंबन करना चाहिए इसका सारा तंत्र और मत्र मै अच्छी तरह जानता हूं, ऐसी मेरे साथ रहने वाले, 'आअमवासियों' की राय है। मेरी इतनी स्थाति (!) होने के कारण गुण्छुब्धाः स्वयमेव सपदः के न्याय से यह सदस्यता

अपने आपही मेरे पास चली आई। इसी सिलसिले मे गत दिसम्बर मे मै सिमिति का सदस्य होने के नाते अन्य सदस्यों के साथ धारवाड स्थित बाल-अपराधियों की पाठशाला (बोर्स्टल स्कूल) देखने के लिए गया था। कर्नीटकी भाषा मोटर

उस दिन प्रायः प्रतिचारा उत्साह बढाने वाली सदीं में हम लोग बेलगाव से मोटर मे बैठकर श्राये थे। सुना था कि कर्नाटक की मोटरे भी चलते समय बहुत ज्यादा श्रावाज़ करती है। थोडा श्रनुभव भी हुन्ना था। मोटर में बम्बई राज्य का पूरा प्रतिविम्ब था। गुजराती, सिधी, महाराष्ट्रीय त्र्यौर कर्नाटकी सभी उसमें बैठे हुए थे। बिना किसी विभक्ती-करण की चर्चा के हमने यह प्रवास किया, यह जानकर शायद कुछ होगों को त्राश्चर्य होगा । बाहर तो थोडी ठंड थी ही, उसके त्रातिरिक्त पास ही में 'सकाल' (पूना का प्रातःकालीन मराठी दैनिक) के बाबा बैठे हुए थे ऋतः ठड ऋधिक बढ जाने का डर पैदा हो गया था । पर वह डर वेकार साबित हुन्ना। रास्ते की वनशोभा देखते हुए, इस राज्य के कारागृहों को राजप्रासादों का वैभव प्राप्त कराने के उपायों पर विचार करते हुए. हम सहीसलामत ऋपने मुकाम पर पहुँच गये थे। हमारा सारथी 'ऋविन्ध' (श्रच्छिद्धकरण थानी मुसलमान) था श्रौर नाम भी उसका डरावना था। पुनश्च, बडे तड़के वह किसी को कब्रिस्तान में पहुचाकर आया था। गाडी त्रगर उसने किसी खंड में गिरादी होती तो एक ही समयावच्छेद से बहुतसे महान् नेतास्रो को सद्गति (!) प्रदान करने का महापुण्य उसके हाथों सिद्ध हो गया होता श्रीर दुनिया से कुछ काफिरों का खातमा हो गया होता । पर ऐसा पाक खयाल उसके दिमाग में नहीं श्राया । इसका कारण कदाचित् मेरा वह रोत्राब हो, जिसमें कि मैं शाही दिल्ली की हिन्दुस्तानी श्रर्थात् उद् मे बोल रहा था। कम से कम मुफ्ते तो यही प्रतीत होता है।

पुस्तक की चोरी

मुख्य दरवाजे के समीप गाड़ी के आते ही बैड शुरू हो गया। पहरांवें से वहाँ खंडे हुए लड़के कैदी नहीं प्रतीत होते थे। किवहुना, परकोटे को छोड़ वहा अन्य कोई भी ऐसी वस्तु नहीं थी, जिससे यह कहा जाय कि वह जेल है। बंदूक वाले और डड़े वाले सिपाही वहाँ नहीं थे। मुख्य द्वार पर लिखा हुआ 'पाठशाला' शब्द यथार्थ प्रतीत होता था। परकोटे के भाग से भीतर पहुँच जाने पर सारा हृदय आल्हाददायक ही था। ब्यवस्थित पद्धित से बगीचा लगाया हुआ था अतः समता और खानबद्धता का नेत्राकर्यक सामंजस्य दिखाई देता था। सामान्य जेलों में दिखाई देने वाला वस्तु का स्वरूप यहा बिलकुल नहीं दिखता था। इधर-उघर आने-जाने वाले व्यक्ति मुक्ततापूर्वक आते-जाते नजर आते थे।

श्रिषकारी हमे भिन्न-भिन्न इमारतों में चलने वाले वगों में ले गये। उर्दू, मराठी, कन्नड, गुजराती श्रादि के प्राथमिक शिच्या के वर्ग हमने देखें। एक श्रग्नेज़ी का वर्ग देखा। हमारे में से कुछ ने परीच्चक का भी काम किया। वर्गस्थ शिच्चकों ने श्रपने श्रनुभव बताये। वरिष्ठ श्रिष्ठिक कारियों ने श्रपराधियों के वर्गीकरण के बारे मे जानकारी दी। मालूम पड़ा कि बहुत से लड़के तरखानी, नक्काशी, जुनाई, सिलाई श्रादि का बड़ा श्रच्छा काम करते हैं। मेरे मन में कुछ श्रीर ही विचार चल रहे थे। साधारणतया कोई होशियार लड़का दीखता तो मैं उससे पूछताछ करता। उसके घर की श्रवस्था, उसके माता-पिता का व्यवहार, उसके सगी-साथी श्रादि के बारे में विशेष पूछताछ करता। चोरी किस स्थिति में की, यह पता चलाने की मेरी तीव्र उत्सुकता रहती थी। मैंने जिस-जिससे पूछा, उसने श्रपनी चोरी स्वीकार की श्रोर किसीने भी यह शिकायत नहीं की कि उसे बेकसूर पकड़ा गया है। दूसरी जेलों के कैदियों के बारे में इससे

कुछ उल्रटा ही अनुभव आया था। वे लोग प्रायः पुलिस के विरुद्ध शिकायत किया करते थे। कोई जज की शिकायत करता। एक भी ऐसा नहीं दिखाई दिया जिसने ऋपना ऋपराध मजूर किया हो ऋौर कहा हो कि मुस्ते जो सजा दी गई है वह ठीक ही है। इस जगह लोगों की असत्य बोलने की श्रादत पड गई हो ऐसा नजर नहीं श्राता था। कुछ लोग 'संगति के कारण तथा कुछ लोग घर के अव्यवस्थित वातावरण के कारण बिगडे हए अथवा बाम मार्ग पर लगे हुए थे। इस प्रकार पूछताछ करते-करते मै एक ऐसे लड़के के पास पहुँचा जो देखने मे सुन्दर, साफ-सुथरा और बुद्धिमान नज़र त्र्याता था । मैने उसकी भी जानकारी ली । उसने कहा. "मैंने मार-पीट नहीं की, कुछ नहीं किया, जिस घर में हम रहा करते थे उसके मालिक की मेज पर से एक पुस्तक उठाकर मै ले गया था। वह हमेशा घटो तक उस किताब को दैखा करता था। इधर-उधर चक्कर लगाता, फिर उस किताब को देखता । घटो तक बाहर रहता श्रीर फिर अन्दर आता-कभा आनन्द मे कभी विपाद मे । फिर पुस्तक की श्रोर देखता। श्रीर यह सब मुक्ते श्रपनी जगह से दीखा करता था। मेरी उत्सकता बढ गई श्रोर एक दिन मैने उस मालिक को बाहर गया जानकर वह पुस्तक उठा ली । उसे मालूम पड गया । उसने पुलिस मे खबर कर दी-बस, मुफ्तपर मुकदमा चला श्रीर मै यहा चला श्राया।" लड़के का सारा कथन सत्य नहीं था; पर पुस्तक की चोरी निमित्त मात्र रही इतना निश्चित था। पुस्तक की चोरी के कारण ऋपनी जिन्दगी के तीन-चार बरस यह लंडका यहाँ बितायेगा, यह खयाल मेरे मन मे श्राया श्रौर

राजकन्या का ऋपहरगा

श्रौर मुक्ते श्रपने जीवन की लगभग चालीस बरस पुरानी घटना याद हो श्राई । हमारे निवासस्थान से एक फर्लाङ्ग के श्रन्तर पर हमारे एक मालदार सबन्धी रहा करते थे। उनका परिवार बडा था। पाच-पचास जवान, श्रनेक नौकर, प्रबन्धक श्रादि लगभग सारी व्यवस्था एक राज्य का समय रहा होगा। पूना का वातावरण उन दिनो बडा विलद्धण था। जब्त की हुई किताबों का पढ़ना बड़ा भारी पराक्रम समभा जाता था। कही किसी मन्दिर की दीवार पर ऋंग्रेजो के खिलाफ लिखना या एकाध इस्तिलिखित पत्र को सार्वजनिक जगहो पर चिपकाना तो रगा-दुर्ग पर विजय प्राप्त करने के मदश प्रतीत होता था। हम चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र के लंडके एक जगह जमा होते थे। गांव से वाहर किसी जगह बैठकर ग्रप्त चर्चाये किया करते थे। तीसरी मजिल की उपमजिल में बैठकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपायो पर विचार किया करते थे। ऐसी इच्छा होती थी कि कुछ न कुछ श्रद्भुत कार्य किया जाय। उस काल श्रोर उम्र दोनो ही की दृष्टि से इस प्रकार की इच्छा का होना स्वाभाविक था। समाचारपत्रों में राज-ैतिक डकैतियो का वर्णन पढ़ते समय चित्त रोमाचित हो उठता था। भिन्न-भिन्न षड्यन्त्रों के मुकदमों के वर्णानों से भरे हुए समाचारपत्रों के ख्रंक द्धियाक महत्व के नहीं प्रत्युत नोटो की भाँति मुख्यवान प्रतीत हुन्ना करते थे। एक दृष्टि से वे करेसी नोट का काम भी करते थे, क्योंकि हमारे विचारों का विनिमय उन्हीं की सहायता से हुन्ना करता था। इस परिस्थिति में हम लोगो की मानसिक सृष्टि किसी खतरे की परवाह नहीं करती थी श्रौर लौकिक कल्पनाश्रो को स्वीकार नहीं करती थी। इन्हीं दिनों एक सप्रभात में किसी काम से मै अपने ऊपर उन्निखित सबन्धी के घर पर गया। बड़े दरवाजे में से होकर जाने के बाद एक श्रोर के श्रोसारे पर क्लकों के बैठने की जगह थी श्रौर मसनदो पर हिसाब की बहियाँ तथा श्रन्य फागज रखे रहा करते थे। उस दिन अनायास ही एक आले की ओर नजर गई।

वहाँ एक रग-बिरगी गत्तेवाली किताब दिखाई दी। सहज उत्सकता से मैं उसके पास गया । वह श्रापटे का लिखा 'रूप नगर की राजकन्या' नामक उपन्यास निकला । श्रापटे का 'गड श्राला पण सिंह गेला' नामक उपन्यास मै इससे पूर्व पढ़ चुका था। 'उष:काल' का भी कुछ हिस्सा मैने पढ़ डाला था । त्रापटे के उनन्यास कैसे होते है, इसका ज्ञान सुक्ते था । प्रसग काफी दुर्धर था। प्रलोभन श्रसंवरणीय था। पुस्तक के मुख पृष्ठ पर श्रंकित चित्र ही बता रहा था कि मुक्ते इस मौके पर किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। श्रोसारे का खबा मुगल सेना के किसी ख़ान की तरह नज़र श्रा रहा था। इधर-उधर श्राने-जाने वाले जवान लोग सेना की भाँति मुक्त पर त्राकमण करने के लिए त्रा रहे है, ऐसा भास हुत्रा। ऐसा प्रतीत हुत्रा कि चित्र वाली राजकन्या असहाय दृष्टि से मेरी ओर देख रही है और एक चार्ण का भी विलंब लगाने से एक युग का नाश हो जायगा ऐसा वह सचित कर रही है। विचार करने के लिए समय नहीं था। मन की विवेक की वीमारी अभी नहीं लगी थी। दिस्ति हस्त ने पुस्तक पर कब्जा किया, वाम इस्त ने कुर्ता ऊपर उठाया, श्रौर एक च्चा के श्रन्दर 'रूप-नगर की राजकन्या' हृदय-कपाट मे ऋदश्य हो गई। पर ऋगभूत बुद्धपने की भीति तो थी ही। चेहरा ऐन मौके पर विश्वासघात न कर बैठे इसलिए 'ऋभी ऋाया' 'ऋभी ऋाया' ऐसा कहते ऋौर किसी के बुलावे का प्रत्युत्तर देने का त्राभास उत्पन्न करते हुए त्र्रोसारे मे से त्र्रगले दालान मे त्रीर वहाँ से बड़े दरवाजे मे होते हुए यह राजपूत वीर सही सलामत बाहर निकल त्राया ! मेरा जन्म राजपूताने का है, श्रातः मै त्रापने को त्राभिमानपूरक राजपूत कहता हूँ श्रौर श्रव मेरे उपरिलिखित पराक्रम को सुनकर मेरे इस दावे को कौन ऋस्वीकार करेगा !

नही चाहिए यह राजकन्या !

श्रब, यह लाई हुई लूट कहां रखी जाय इस बात की उधेड़-बन शरू हुई । सीधे तीसरी मजिल पर जाकर पहले मैंने उस बेचारी राजकन्या को निर्दयतापूर्वक टांड मे डाल दिया । तत्पश्चात् दोपहर से मैने उसे पढ़ना शुरू किया त्र्यौर रात तक खत्म कर डाला । हल्दीघाटी का युद्ध, सामलदास का स्कूर्तिदायक कवित्व तथा उन राजपूत वीरो के पराक्रम की गाथा पढ़ते-पढ़ते चित्त सुध-बुध खो बैठा। "पतिया लिखत है, छतिया फटत है, कलम न धरत है हाथ ! तुष्ट ऋलमगीर कपट कमायो राखो श्री हरिलाज।" राजकन्या के इस पत्र के भीतर का बृत्तान्त पढते ही मै एकदम उठकर खडा हो गया । इधर-उधर देखने लगा, पर कोई नजर न स्राया । मकान में मन्नाटा था। बाहर रास्ते पर भी सन्नाटा था। पुस्तक खत्म हो गई। रात भर नीद न ऋाई। पुस्तक की सारी घटनाये ऋगंखो के सामने खडी हो जाती था। थोडी-सी ऋधकच्ची नींद ऋाती और फिर स्वप्न में वही घटनायें त्रौर तीव्रता से त्रा जाती। तत्पश्चात् धीमे-धीमे वे सारी त्रद्भुत घटनाएं श्रदृश्य होने लग गई। रात का श्रधेरा कम होने लग गया। प्रभात हो त्राया । उसके साथ ही मस्तिन्क मे विचार त्राया कि किसी को पूछे बगैर मै जो यह किताव ले आया हूँ यह ठीक किया है क्या ! मैंने यह चोरी तो नहीं की, ऐसी शंका होने लगी। पुस्तक वाली राजकन्या ने पत्र लिखकर राजा को बुलाया था। मुभ्ते पुस्तक ले जाने के लिए किसने कहा ? प्रश्न तो पैदा हो गया, पर उसका कोई उत्तर नहीं देते बना। ऐसा काम इससे पहले कभी किया नहीं था। श्रतः मन श्रीर ज्यादा धवराने लगा । कल श्रगर किसी को यह मालूम पड़ जाय कि यह पुस्तक मै उठा लाया हूँ तो क्या होगा ? पढ़ने के लिए माग ली होती तो नहीं मिल सकती थी क्या ? इस तरह के अनेक प्रश्न उठने लगे। किया हुआ काम यदि पराक्रम मान भी लिया जाय तो भी उसे पुर्यकृत्य तो नहीं माना जा सकता। कुछ गलती हो गई ऐसा प्रतीत होने लगा। उसके बाद एकदम यह विचार श्राया कि पुस्तक जहां से लाया हूँ वहीं रख श्राक तब तो ठीक हो जायगा न। इस विचार के श्राने पर श्रानन्ट श्रमुभव हुश्रा। मन पर पड़ा हुश्रा बांभ्र उतरता हुश्रा-सा नज़र श्राया। उस मार्ग की बाधाएँ भी दिखाई दैने लगीं। पुस्तक रखते समय किसी ने देख लिया तो ! किसी ने पकड़ लिया तो ! ले जाते समय कुछ बुरा कर रहा हूँ, यह भावना ही नहीं थी, श्रीर श्रव उसे वापस करते समय मन कुछ लंगड़ा-सा हो रहा था। श्रव काम कैसे होगा ! पुस्तक के ऊपर वाला चित्र कुछ उपाय निर्देश नहीं कर रहा था। सामलदास की कविता भी कोई पेरणा नहीं दे रही थी। राजकन्या का पत्र श्रव दुर्वल साबित होने लगा। काल-स्तब्ध नहीं है, यह एक श्रव्छी बात है. श्रन्यथा बड़ी विषमता उपस्थित होगई होती। सबेरा हुश्रा। कुछ देर बाद मैं उस मकान के दरवाजे तक गया। पर श्रादमी श्रा-जा रहे थे, मैं वापस चला श्राया!

छुटकारा

चार-पांच मर्तवा मैं पुस्तक रखने के लिए गया, पर रख नहीं पाया । इसके बाद वह किताब घर पर ही पड़ी रही । मन अन्य बातों में लग गया और कुछ दिनो बाद हमारे घर में से वह 'रूपनगर की राजकन्या' अहरुय हो गई । मुमे संतोष हुआ। मैं इस सारी घटना को भूल गया । उसकी दोबारा याद कुछ दिन पहले धारवाड के निर्मा के की पाठ-शाला में हुई । स्मृति आनिन्दित कर रही थी, विषयण कर रही थी। इस समय प्राप्त अनुभवों से और उपार्जित ज्ञान से नाना प्रकार के विचार मन में उत्पन्न हुए । याद आया कि लोकमान्य ने एक जगह लिखा है कि ज्ञानप्राप्ति के लिए पुस्तकों का चुराना पाप नहीं है। आप्तवाक्य का प्रमास्य

मिल गया। वकीली का ज्ञान कहने लगा कि ऋपराध यदि ऋपराध के इरादे से किया गया हो तभी अपराध होता है। जो वस्तु एकोपयोगी है, श्रर्थात् एक बार उपभोग लेने के पश्चात् जो नष्ट हो जाती है, उसका श्रनधिकृत उपभोग लेना घोशी है। परन्तु जो वस्तु वहुउपयोगी है उसका श्रनधिकृत उपभोग लेना चोरी कैसे हो सकती है ? कारण वह वस्तु तो फिर बची रहती ही है। पुस्तक को एक ने पढ़ा, मालिक की अनुज्ञा के बगर पढा, तो वह कृत्य चोरी कैसे हो जायगा ? सामाजिक पार्श्वभूमि का विचार न करके किसी काम को गुनाह साबित करना कैमे उचित कहा जा सकता है ! सामने खंडे हुए लंडको को यदि वास्तव में ऋपराधी साबित करना हो तो फिर मैं कैसे अपराध से बरी हो सकता हूँ १ ज्ञान की लालसा से किया गया ऋपराध यदि ऋपराध नहीं तो जीवित रहने के लिए, बैकारी के कारण निराश होकर, किये गये कृत्यों को गुनाह कैसे कहा जाय १ इस प्रकार के अनेक विचार सिर में दर्द पैदा करने लग गये। पर स्पष्ट कहूं तो इन विचारों से मुभ्रे सतोष ही हुन्ना। उस लडके की स्रोर सहानुभूति से देखना जितना मेरे लिए मुलभ हो सका उतना मेरे अन्य सहकारियो के लिए न हो सका होगा। पर कौन कहे, उनमे से भी किसीने बचपन में ऐसा ही कुछ काम किया हो ? एक बार मेरे मन में आया कि मैं अपनी यह स्मृति उन्हें भी सुना दूं, पर उसी बीच वरिष्ठ श्रिधिकारी ने बताया कि भोजन का समय होगया है श्रीर मन की बात मन ही में रह गई। तथापि यह 'गुह्यात् गुह्यतरम्' मैंने त्राज कह डाला त्रीर त्रव मै संतोष की सांस ले रहा हैं।

स्वर्गीय मूलामाई देसाई

सिदेह प्रेम श्रीर जीवन मुफ्ते श्राकर्षित करते है, तथापि स्वातन्त्र्य के लिए मैं इन दोनों का परित्याग करने में हिचिकिचाहट महस्स नहीं करूँगा।" १९३२ के जुलाई महीने के श्रान्त में नासिक जेल के राजकीय कैदियों के समद्ध भाषण करते हुए स्व॰ भूलामाई देसाई ने उपरिनिर्दिष्ट शब्दों में उपसंहार थिया था।

सन् २२ में नासिक जेल के अन्दर मूलामाई देसाई तथा अनेक राजकीय कैंदियों को भिन्न-भिन्न स्थानों में रखा गया था और उन्हें एक जगह लाने के लिए किये गये सारे यत्न असफल हो गये थे। जून के लगभग मैं और अन्य दस-बारह राजकीय कैंदी नासिक जेल में आकर प्रविष्ट हुए और वहा आने के पश्चात् अनेक युक्तियों से, महीने में कम-से-कम एक बार इक्डे होने की अनुमित हासिल कर ली। उस पहले प्रसग में भूलामाई ने जो माप्या दिया था, उस समय के ये उद्गार है। एक वर्ष तक भूलामाई हमारे साथ रहे। उनका व्यवहार सबके साथ मधुर या। वह ऋपने साथ जो प्रन्थ ले ऋाये थे तथा उन्होंने हमे ऋपने व्यव-साय के ऋनुभवों की जो बातें सुनाई, उनसे हममे से ऋनेक को पर्यास ज्ञान तथा मनोरंजन हासिल हुऋा था। उन दिनों हम उन्हें एक राजनीतिज्ञ पुरुष की ऋपेचा वकालती पेशे में ऋत्युच्च शिखर पर पहुंचे हुए व्यक्ति की हिस्ट से देखा करते थे।

पंत जी की सिफारिश

सन् २४ में चुनावों के निमित्त से स्व॰ भूलाभाई देसाई के साथ स्थापित मेरा परिचय बढता चला गया। सबसे पहले निकट परिचय का अवसर सन् १६२६ में 'नवाकाल अभियांग' के दिनों में आया। इमारे मराठी नाट्यच्छटा लेखक श्री दिवाकर के शब्दों का प्रयोग करते हुए कहना हो तो 'मै भी उसमें था'। उस समय अदालत के सामने किया गया उनका बचाव का भाषण आज भी मेरे कानों में गूझ रहा है। चुनाव के दिनों में यद्यपि उनके वक्तुत्व का विशेष बोलवाला नहीं हुआ, तो भी उनके व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण व्यापारी वर्ग से मत प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिली।

चुनाव के पश्चात् १८ जनवरी १६३५ को डा॰ श्रन्सारी के भव्य प्रासाद मे श्रसेम्बली कांग्रेस-पन्न के सभासदों की पहली बैठक हुई थी। कुछ लोगों के मन मे था कि पं॰ गोविन्दवल्लभ पन्त को नेता चुना जाय। पन्त जी शरीर से जितने भव्य हैं, मन से तथा विद्वत्ता से भी उतने ही भव्य हैं। उनकी श्रोर देखते ही न्यायमृर्ति रानाडे का स्मरण हो श्राता है। न्यायमृर्ति रानाडे के समान ही प्रायः सब विपयों मे उनकी पारंगतता है। मूलाभाई के सम्बन्ध मे किसी का मन पूर्वग्रहदूषित था सो बात नहीं थी, तथापि कांग्रेस के राजनीतिक चेत्र मे उनका प्रवेश श्रत्यन्त श्रमिनव था, एतावता यदि किन्हीं लोगों के मन मे उनके प्रति किंचित् श्रविश्वास

की भावना काम करती थी तो वह चम्य ही थी। तथापि स्वयं पंत जी ने नेतृत्व के लिए भूलाभाई का नाम सुभाया था, अतः नेतृ-निर्वाचन के समय प्रायः सदा उत्पन्न होने वाले एक दृष्टि से अत्यन्त नाजुक और एक दृष्टि से अत्यन्त नाजुक और एक

द्यिता का दंतत्रण

भूलाभाई देसाई ने १६३५ से लेकर १६४४ के अन्त तक मध्यवर्ती धारासभा के कांग्रेस-पद्म का नेतृत्व किया। उनके नेतृत्व और कर्तृत्व पर विस्तारपूर्वक अपनी राय ज़ाहिर करना इस समय अप्रस्तुत एव अप्रासांगिक है, तथापि किन्ही बातो पर प्रकाश डालना आवश्यक है। उनके पहले भाषण से लोग इतने मुग्ध हो गये थे कि उनके भाषण के पश्चात् कर्नल गिडने ने खुले आम यह कहा कि ऐसा वक्तृत्व यदि राउन्ड-टेबल-कांफ्रेंस के समय हुआ होता तो भारत के राजकीय इतिहास की रूपरेखा ही भिन्न हो जाती।

उनका वक्तृत्व अत्यन्त मधुर था। कभी कुछ कठोरता रही भी तो वह दियता के दंतवण ितनी ही रहती थी, ऐसा यदि हम कहे तो इससे सदाभिक्षच में कोई बाधा आयेगी, ऐसा प्रतीत नहीं होता। आह्वान की अपेद्धा आवाहन से, आवाज़ की अपेद्धा आश्य से, वह ओतृवृन्दकी इदय प्रन्थियों को खोला करते थे। उनके भाषण के अनन्तर होने वाला परिणाम मानवीय मन के लिए आंगभूत सौजन्य ही का परिणाम हुआ करता था। बहस के लिए आने वाले विषयों के बारे में विस्तार से तैयारी वह शायद ही कभी किया करते थे। इतना ही क्यो, घटो होने वाले अपने भाषणों के लिए भी वह कभी नोट नहीं लिया करते थे। पर उनके भाषण में एक के पीछे एक मुद्द सुज्यवस्थित और सुसगत रूप से रचे हुए दिखाई दिया करते थे। वाद-विवाद में अनेक बार शब्द-रचना के तथा

अन्य मुद्दों के बारे में उलभाने पैदा हो जाया करती थी, पर वस्तुरिथित का आकलन तथा आवश्यक अभिप्राय को व्यक्त करने वाली शब्द-रचना वह इस प्रकार लीलापूर्वक किया करते थे कि हम सब आश्चर्य विमुख हो जाते थे।

कृष्ण की मुरली

प्रसिद्ध किकेट पटु जैक हान्स का वर्णन करते हुए ए० जी० गार्डीनर ने कहा है कि 'वैट क्या था हान्स का ख्रागे बढ़ा हुद्या हाथ का हिस्सा ही था!" भूलाभाई के विषय में भी कुछ वसी ही बात थी। सभा-एह में उनके व्यवहार को देखकर हमें यही प्रतीत हुद्या करता था कि वह व्यवहार उनकी व्यक्तिमत्ता का ही ख्रागे बढा हुद्या हिस्सा है। उनका भाषण होने वाला है, यह पता चलते ही प्रेत्तकों की गैलरी, सारी सभाग्रह, ख्रिषकारी वर्ग द्यादि बडी उत्सुकता से उपस्थित रहता था तथा कृष्ण की मुरली की भाति उनके मनोहारी वक्तुत्व का ख्राकंटपान किया करता था।

मृदुपूंजी वाले

भूलाभाई निर्दोष थे. ऐसा कोई नहीं कह सकता। विश्व में ऊपर विनायक और नीचे सपादक को छोड़ सभी दोष-सिहित है। अनेक बार बड़े-बड़े प्रश्नों के विषय में उनकी विचारधारा हमारी दृष्टि में अशुद्ध रहा करती थी। आर्थिक विषय में उन्हीं के शब्दों में कहें तो वे मृदुपूझी वाले (मिटीगेटेड कैपीटिलिड्म) व्यक्तियों की कच्चा में आते थे। मजदूरों के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकीण मूलप्राही नहीं था। तथापि सहानुभूति उनमें परिपूर्ण थी। सार्वजनिक हडताल के बारे में जब बिल आया था, उस समय सुभे उनके साथ एक घटे तक भगड़ना पड़ा था और वह भी इतना कि वह थोड़ा कोधपूर्वक बोले, "तुम इस प्रकार तर्क कर रहे हो, मानों कोई न्यायाधीश के सामने वहस कर रहे हो !"

मैंने कहा, ''श्राप कुछ भी कहिए पर मेरा कहना काग्रेस की श्राज तक की नीति के श्रनुकुल है।''

उन्होंने बापूजी ऋगों से सलाह ली ऋौर मेरा कहना मंजूर कर लिया।
यही वृत्ति उनकी विशेषता थी। ऋपनी नेतागीरी प्रदर्शित करना ऋथवा
ऋौरों पर लादना उनकी वृत्ति में नहीं था ऋौर उसके कारण उत्पन्न होने
वाले गुणों एवं दोषों दोनों के वह एक उत्कृष्ट उदाहरण थे। ऋपने ऋौर
ऋपने ऋनुयायियों के बीच किसी समय कोई मतमेद उत्पन्न हो जाता था
तो वह श्री ऋगों की सलाह लेते थे ऋौर प्रायः उसके ऋनुसार ऋाचरण
करते थे, यह एक उल्लेखनीय बात है।

राजनीति-जीवन का खेल

प्रारम्भ में समागृह के अन्दर मिलने वाली जय और पराजय उन्हें अनिन्दत और दुःखित किया करती थी। जो स्थितप्रज्ञता इस सम्बन्ध में पत ओर सत्यमूर्ति में थी, वह प्रारम्भ में भूलाभाई में नहीं थी। क्वेद्य-भूकप के स्थान प्रस्ताव पर हमारा सिर्फ दो मतों से पराभव हुआ था। उसके बाद जब हम अपने पच्च-कार्यालय में आये उस समय वह बहुत देर तक व्यथित होते रहे। पराभव उनके चित्त को कचोटे जा रहा था। उस समय सत्यमूर्ति ने उनसे कहा कि पार्लिमेटरी जीवन में मनुष्य को उसी स्थितप्रज्ञता से व्यवहार करना चाहिए जिससे वकील अदालत में किया करता है। ऐसा कह कर सत्यमूर्ति ने अर्थपूर्ण उद्गार व्यक्त करते हुए कहा था—"राजनीति वकालत नहीं है बल्कि वह जीवन का एक खेल है।"

गलती हुई जरूर

उनका स्वभाव श्रपने सहकारियों के बारे में श्रात्यन्त प्रेम भरा था। वह कहा करते थे कि हम सब एक ही परिवार के श्राग हैं। उनका व्यवहार भी वैसा ही था। पत्त-कार्यालय के खर्च का सबसे बड़ा हिस्सा उन्हीं की जेब से आया करता था। यद्यपि उनके आरे उनके आनुयायियों के सम्बन्ध स्नेह और सहकार्य से पूर्ण थे पर किन्ही-किन्ही मौकों पर वाचिक मुठभेड़ हो जाया करती थी। एक प्रसग मुभे स्मरण हो आता है। बीमा कानूत की वहस के मौके पर उन्होंने जो भूमिका उपस्थित की थी वह पत्त के निर्ण्य से थोड़ी सी हट कर थी। ज्योही उन्होंने यह भूमिका उपस्थित की खो वह पत्त के त्योही पत्त मे नाराजगी पैदा होगई। इस घटना पर विचार करने के लिए आयोजित सभा में खड़े होकर उन्होंने कहा—"मैंने गलती की है, आप का विश्वास हो तो मैं आपका नेता बना रहूँगा, अन्यथा हट जाऊँगा।" और तत्काल उनकी आंखों में अअ आगये और वह नीचे बैठ गये। दो मिनट सभा मे स्तब्धता छाई रही। उसके बाद मैंने कहा, "प्रजातात्रिक नेतृत्व कैसा होना चाहिए, इसका उत्कृष्ट पाठ आपने हमारे सामने रखा है। हमारा आप पर पूरा विश्वास है और जो कुछ हो गया है उसे रेकार्ड पर छोड़ दिया जाय।" मेरा मुभाव सर्वसम्मति से मंजूर हो गया और पत्त के निर्ण्य के अनुसार ही बीमा कानून में सराोधन हो गया।

विश्वासी-पच्च नेता

एक और नाज़क प्रसग मे, जिसमें उनके वैयक्तिक व्यवहार ही कारणीभृत था, इस प्रकार की स्रवस्था पैदा हो गई थी। उस समय उनके विरुद्ध बवंडर उठ खडा हुआ था। उन्होंने पक्ष के सामने भाषण देते हुए कहा—''मैं यदि ठीक हूं तो आप मेरे पीछे, आयेंगे ही, पर आपकी निष्ठा की परख तो तब है जब आप मेरे गलती करने पर भी मेरे पीछे चलें।' निःसन्देह पद्ध ने इस परख को मान्य नहीं किया। कारण, इस बार की गलती उनके वैयक्तिक आचरण से सम्बन्ध रखती थी। इस प्रकार के दस बरसों के इक्के-दुक्के प्रसंगों को छोडदें तो यो पद्ध का

उनपर शत-प्रति-शत विश्वास था ।

प्रतिकूल परिस्थिति का शिकार

जेल में रहने वालों के मत श्रोर बाहर के व्यक्तियों के व्यापार के बारे में पद्मिनिष्ठ दृष्टि से जो श्रमचार हुआ, यह साफ है कि उसी का प्रभाव भूलाभाई के राजनीतिक जीवन पर पड़ा । श्राज़ाद हिन्द फौज के मुकदमें में उनके द्वारा की गई देश-सेवा तथा वकालत में प्रदर्शित किया गया नैपुराय, बचाव के काम में व्यक्त की गई श्रालौकिक तथा श्रम्तर्राष्ट्रीय खहप की उच्च एव नीतियुक्त भूमिका श्रादि बात तो नये इतिहास की वस्तुएँ हैं।

भूलाभाई कातिकारक नहीं है, ऐसा कहकर उनको बदनाम करना उचित नहीं, क्योंकि उन्होंने बैसा दावा कभी नहीं किया। प्रयत्नों की पूर्ति पाश्चात्य देशों में सत्ताप्राप्ति ऋथवा ऋषिकार प्राप्ति से होती है। ऋषिकार प्राप्ति का ऋथे है मानवीय विधायक कर्तृत्व के लिए प्राप्त हुआ सुवर्ण ऋप्रवसर। गत पचास बरसों का इतिहास इसी बात का साची है कि इन बरसों में क्रातिवृत्ति वाले ही नहीं, ऋषितु ऋनेक कर्तृत्ववान् व्यक्तियों तथा उनकी विधायक वृत्तियों को पनपने का उचित ऋपसर नहीं मिल पाया, जिसके फलस्वरूप उनकी कीमत मिट्टी के बराबर होगई। ऋनेक वर्षों से भूलाभाई की योग्यता की जानकारी होते हुए भी, उनके गुणों को मान्यता प्राप्त होने पर भी, उन जैसे व्यक्ति को सरकार विरोधी पच्च में काम करना पड़ा, यह एक दुर्भाग्य की वस्तु है।

बड़ा भाई चला गया

, विधायक वृत्ति वाले तथा कर्तृ त्ववान् व्यक्तियो को सत्ता नही मिल पाती श्रीर जो व्यक्ति कार्तिकारक प्रवृत्ति वाले है उन्हे श्रप्रिय प्रतीत होने बाले विधायक कार्य मे लगाया जाता है, ये दोनो बातें इस देश मे एक ही समय में हो रही हैं! भूलाभाई ऋौर ऋधिक काल तक जीवित रहते तो इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने ऋषिक कार्य करके दिखाया होता। उनकी मृत्यु से एक उत्कृष्ट वकील, एक उत्तम नागरिक तथा एक ईमानदार कार्यकर्त्ता ल्रप्त होगया श्रीर व्यक्तिशः कहना हो तो, बहुतो को यह प्रतीत होता है कि हमारा एक बड़ा भाई ही चला गया !

खटबुने की पुकार

न-ही-मन उद्भृत होने वाले विचारों का प्रभाव स्वयं मन पर पडता है। कोई आनन्ददायक विचार आया कि मन तत्काल प्रसन्न हो उठता है, इसी तरह यदि कोई दुःखद विचार मन में आया तो समस्त मानसिक वातावरण उदास हो जाता है। मन के अन्दर के विचार मन ही सुनता है और तदुद्भूत प्रभावों का अनुभव करता है और जब मनोगत विचार वाणी द्वारा बहिर्गत होते हैं तब उनका आकर्णन बोलने वाला भी करता है और सुनने वाला भी करता है।

मनुष्य ने स्वतः एकान्त मे कुछ गुनगुनाया अथवा दर्पण के सामने खड़े होकर मुँह टेढ़ा-मेढा करके एकाध शब्दों का उच्चारण किया तो उस समय वह स्वयं श्रोता का काम वर रहा होता है और उसके अपने शब्दों का ही उस पर तथा उसके मन पर प्रभाव पड़ा करता है। शब्द का स्वयं वक्ता पर जैसा प्रभाव पड़ता है वैसा श्रोता पर भी पडता है। मगर यह प्रभाव कितना पड़ता है, कैसे पड़ता है, किस प्रकार पड़ता है

यह सब श्राता की मनःस्थिति पर श्रयन्निवत रहता है। बोलने वाला बोल जाता है, श्रनेक बार उसे यह भी ज्ञात नहीं रहता कि उसके सामने श्रोता खड़े है, किंबहुना वह किसी व्यक्ति-विशेष को उद्देश्य करके बोल रहा होता है, सो बात भी नहीं रहती। कितनी ही बाते सामाजिक परम्परा के वशीभूत होकर श्रयवा प्रचलनक्रम के वशीभूत होकर कही जाती है। सबेरे के समय वासुदेव गाता हुश्रा फेरा लगाता है। श्रोता की मनःस्थिति के श्रनुरूप विचार उस गाने को सुनकर उठा करते है। रात के समय कोई फकीर दोहे गाता हुश्रा श्राता है। उनके भीतर रहने वाले भाव कुछ श्रोताश्रो के चित्त पर पर्याप्त प्रभाव डालते है श्रीर कुछ व्यक्तियों के चित्त पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

सबेरे से लेकर रात होने तक चाखते-चिल्लाते जाने वालो का, काव्य-पाठ करते जाने वालो का, भिन्न-भिन्न पदाथो के सम्बन्ध में ऋथवा ऋन्य किन्हीं सुिपधात्रों के सम्बन्ध में ऊचे स्वर से पुकारते हुए गिलयों में सचार करने वालों का यदि लेखा-जोखा किया जाय तो हमारा जीवन कितनी विविधतात्रों से भरा हुआ है इस बात का परिज्ञान होगा। प्रत्येक कितनी प्रत्येक पुकार समाज के भिन्न-भिन्न पहलुख्यों का प्रतिबम्ब लिये रहती है। समाज की प्रथात्रों का सार उसमें समाया हुआ होता है। समाज के सुख-दु:खों का हिसाब उन्हें देखकर कोई लगाने लग जाय तो वह उसका अप्रयास न होगा। इतना ही क्यों उन्हें दखकर इस बात का परिज्ञान भी होता है कि समाज में आध्यात्मिक भावना का स्तर किस प्रकार का है।

शब्द में कितनी विराट् शांक है ? उपनिषद् में ब्रह्म का शब्दस्वरूप में वर्णन किया गया है। शब्द में ब्रम्तःकरण से लेकर पर्वत पर्यन्त समस्त सूच्म एनं समस्त जब वस्तुब्रों एवं भावनात्रों को मेदने की शक्ति है। उन्हें मिलाने की भा शक्ति है। ब्राक्षा एवं निराशा, सुख एवं दुःख दोनों प्रकार की भावनात्रों को प्रस्त करने वाला यह महान् शब्द अनेक बार एक ही व्यक्ति के मन मे दोनों भावों को एक ही साथ उत्पन्न करता है।

यह अनुभव जहा विचित्र है वहा कुतूहल उत्पन्न करने वाला भी है। वास्तव में वह हरिजन जो हर रोज सबेरे ब्राठ या नौ बजे के समय हमारी गली में से होकर "चारपाई श्रौर बच्चे का पालना बनवाली !" चिल्लाता हुआ जाया करता था सो कोई दुनिया के विरुद्ध बात करता है, ऐसी बात नहीं थी। विश्व की रीति के ऋनुसार इस पूना जैसे बड़े शहर में हर रोज पाच-पचास प्राणी जन्म लिया करते हैं स्त्रीर इसी कारण इस वृद्ध हरिजन का सामाजिक जीवन में स्थान है। त्रातः जिस समय वह उपर्युक्त स्वरूप की घोषणा किया करता है उस समय वह ऋपना नित्यकर्म ही किया करता है। मेरी स्मृति-शक्ति जिस सीमा तक काम करती है उस कालसीमा से उसका यह नित्यकर्म चाल ही है। जन्म लेने वाले बालको की सुविधा का खयाल करने वाला, एक दृष्टि से अनन्त उपकार करने वाला, यह पुरुष पुरुव कुछ त्राजरामर तो है नहीं, किबहुना प्रतिचारा यह भी मरणाभिधावी मार्ग पर त्रागे बढ़ता जा रहा है। पूना शहर इतना बड़ा, पर त्रपने दैनिक व्यवसाय का त्रारम्भ वह हमारी गली ही से करता था, मेरी सम्मति मे इसका कारण भी पर्याप्त महत्वपूर्ण था। हमारी गली से श्मशान बिलकुल सटा हुआ है। हमारा पडोस मानो मृत्य ही का पडौस है। रात को ऋगर कभी वहां गैस की बत्ती नजर ब्राई तो समभाना चाहिये कि ब्रावश्य ही ऋधेरे मे किसी का मार्ग प्रदर्शन करती हुई वह उसके लिए जीवन की परिबन्ध-रेखा के पर पहुँचने का सामान तैयार कर रही है। कीर्ति के सारे रास्ते त्रान्ततः श्मशान ही मे जाकर विराम पाते है। मालदार, भाग्य-वान, गुण्वान तथा दुःखी दिस्ती, नसीव के मारे सब हमारी गली के इस श्मशान घाट पर त्राकर, इच्छा हो या नहीं, साम्यवादी बन जाते हैं। कहना चाहिए बना दिये जाते हैं। एतावता इस दृष्टि से पूने के सारे रास्तो का त्रान्त इसी पवित्र भूमि में होता है। स्त्रीर यह हरिजन भी ठीक इसी जगह पर नदी को पार करके ब्रापने नैत्यिक उद्योग का श्रीगर्शश किया करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने इस घोपगावाक्य से गीता के 'जातस्य हि ध्रुवा मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च' वाले सिद्धात की श्रोर समाज का ध्यान श्राकर्षित करना चाहता है। व्यक्ति श्राया श्रीर चला गया पर मानवीय जीवन का प्रवाह ऋजस्र रूप से गतिमान है। यात्री त्रायेगे त्रौर चले जायेगे, पर मार्ग उसी प्रकार विद्यमान रहेगा । मानवीय जीवन की स्पन्दनशीलता जब तक ग्रानविच्छन्न है तब तक इमारे इस हरिजन का काम भी चलता ही रहेगा। वह चला जायगा तो उसके कम का उत्तराधिकारी उसके काम को करता चला जायेगा यह जाहिर है। उसका कार्य ऋखंड ऋोर ऋजरामर है। मानवीय जीवन भी श्चखंड श्रौर श्चजरामर है। एतावता समाजगत व्यक्ति के मन के भाव भी इसी प्रकार ऋखंड इसी प्रकार ऋजरामर रहा करते है। इस मर जायेगे, आज नहीं तो कल चले जायेंगे, पर मानवीय मन मे यह लालसा बनी रहती है कि हमारे पीछे कोई-न-कोई श्रवश्य बना रहे। धर्मशास्त्र इस लालसा का कारणा भले ही पिडोदक क्रिया की कामना को बताये, पर निश्चित ही मानव मन इस लालसा को किसी अन्य ही हेत से स्वीकार करता है। भोगेच्छा को पुनीत करने वाली यह भावना है। ऋपत्य लालसा नित्य की र्द्यानत्य पर विजय प्रदर्शित करने वाली पार्थिव वस्तु मे उत्पन्न होकर श्रपार्थिव एवं श्राध्यात्मिक उन्नति के लिए कारगीभूत होने वाली एक महान् शक्ति है। निःस्वार्थता की चरम सीमा तक पहुचने के अर्थ प्रोत्साहन प्रदान करने वाली एक प्रेरणा है।

महाश्वेता

श्रीर यदि ऐसा न हुस्रा होता तो मैने श्रपनी गली के मोड पर रहने वाली महाश्वेता के लिए मन-ही-मन त्रादर का स्थान न प्रदान किया होता। मैं उस कुलवरू को महाश्वेता कहता हूं, इसका केवल यही कारण नहीं कि वह खेत कपड़े पहना करती है, प्रत्युत यह कि उसके श्राचार श्रौर विचार भी उतने ही पवित्र है। लगभग एक चौथाई सदी पहले लोगों ने उसे प्रथमतः बड़े सजधज से निकलने वाली बारात मे देखा था। उस समय वह "दश दोष विवर्जिता" नववधू के रूप मे हमारे मुहल्ले मे ऋाई थी ऋौर गृहिगा बनी थी। घर के सभी छोटे-बड़े उसे स्नेह से देखते थे। इतना ही नहीं ऋडोस-पडौस के लोग भी उसकी तारीफ़ किया करते थे। वरस के बाद बरस ऋ।ये ऋौर गुजर गये, बृद्ध सास ऋौर ससुर ने प्रपंच रिचालन का सारा भार उसके ऊपर डालकर इहलोक से बिदा ले ली। वे लोग त्र्याखिरी दिनों में कुछ-कुछ उदास ही से रहते थे। कारण पौत्र-मुख देखने का सौख्य उन्हे उपलब्ध नहीं हो पाया था। इतनी बडी दौलत, इतना बडा नाम, पर उत्तराधिकारी कोई नहीं, इस जानकारी की त्राच चाल पीढी के पति-पत्नि तक पहुंचती जा रही थी। श्रीर प्रतिदिन उन्हें इस बात की जानकारी वह वृद्ध हरिजन त्रपनी पुकार से करवा दिया करता था तथा इस समय भी कराता रहता है।

जब-जब वह सबेरे पैर में फटा-पुराना जूता पहन. कमर मे मैली-कुचैली घोती लपेटे, जर्जर हुए से मुंडासे (मुंडोष्णीष) को सिर पर बाघ तथा कघे पर चारपाई की बान लटकाये हमारे दरवाजे के सामने से (चारपाई श्रीर बच्चे का पालना बुनवालो!) चिल्लाता हुश्रा जाता है तब मेरे मन मे श्राता है कि एक सौ चालीस घारा लगा कर उसका श्राना ही बन्द कर दिया जाय। श्रव तक दस-बारह बार हमने घर मे उसे काम करने का मौका दिया। तो भी यह श्रांति तृष्ण फिर हमसे श्रपनी श्राहकी करवाना चाहता है, इसके क्या मानी हुए ?

पर राजनीति के अनेक धक्के-चपेटे खाकर, दुनिया के अनेक अनुभव हासिल करके मैं अब पूरा विवेकी बन गया हूँ। मेरा यह कबूली जवाब "प्रभावी नेतृत्व" के लिए मुफे भले ही नालायक साबित करता हो तथापि "विधायक कार्य" के लिए मैं अनुपयोगी नहीं हूं, इस बात को अवश्य जाहिर करता है। इतनी बात जरूर है कि मै उस पर दूटा नहीं पड़ता हूँ। और मै इतनी आतुरता दिखाकर करू गा भी क्या १ आडे वक्त सामर्थ्य धारण करना जैसे प्रभु की देन हैं, उसी प्रकार सन्तान की प्राप्ति भी प्रभु की देन हैं, ऐसी मेरी अनुभवों के पश्चात् निर्मित हुई धारणा है।

विश्वगत वैपम्य एव नैवृं एय का अवलोकन करके किसी चार्वाक को प्रतीत होगा कि ईश्वर इस जगत् का कारण नहीं है। पर अन्य व्यक्ति कहेंगे कि इन्हीं वातों के लिए ईश्वर को जगत् का कारण मानना चाहिए। अपमार्ग किवा अयुक्तमार्ग से उपार्जित की हुई सम्पत्ति को समाज परमेश्वर की देन मानता ही है न र इसी न्याय से समाज दारिद्रय और कष्टों को भी सहन करने की सीख दिया करता है। और यह हमारे समाज की सीख जीवन की नैतिक प्रतिष्ठा है। इससे जहा सामाजिक संघर्ष कम होता है वहा वैषम्य मे भी मानसिक समाधान मानने में विवेक माना जाता है। और इसी कारण से औरस सन्तान के अभाव में औरों के लड़कों को अपना लड़का मानकर चलने वाली स्त्री समाज में उन्नत वाता-वरण निर्माण किया करती है।

हर रोज प्रातःकाल इस वृद्ध समाज-सेवक के घोषणा-वाक्यों के द्वारा अपने त्रायुष्य के वर्म के, जीवन की त्रपूर्णता के, मन के भीतर गहराई तक पहुने हुए विघाद के, स्पष्ट रूप में आंखों के समन्न उपस्थित किये जाने पर उसे शांत भाव से देखना और अवग्र करना कोई आसान काम नहीं है। स्त्री के लिए वन्ध्यत्व से बढ़कर अन्य कोई दारुण दुःख नहीं है। और जिस स्त्री को इस बात का ज्ञान हो कि इस वन्ध्यत्व के कारण वह समाज का ऋण नहीं उतार सकती, उसके लिए यह जीवन न्नण-न्नण के लिए मरणप्राय हो जाता है। केवल अपने गुण ही नहीं प्रत्युत अपने दोषों को भी अपनी सन्तित में अवतीर्ण हुआ देखने में माता-पिता को एक प्रकार का सन्म आनन्द हुआ करता है। क्यों होता है यह कौन बता सकता है, और किन शब्दों में बता सकता है!

मातृत्व से स्त्री-जीवन को पूर्णता प्राप्त होती है तथा पराक्रम से पुरुषार्थ सिद्ध होता है। मुसोलिनी कहा करता था कि राष्ट्रीय पराक्रम, धैर्य, स्वार्थ-त्याग इत्यादि बातों के लिए युद्ध द्वारा अवसर प्राप्त हुआ करता है। एत-एव राष्ट्र के परिपूर्ण विकास के लिए युद्ध की आवश्यकता है। अथ, स्त्रियों के बारे में वह कहा करता था कि उनके सद्गुर्णों के विकास के लिए मातृत्व की आवश्यकता है। आज इंग्लैंग्ड में दो लाख प्रोट कुमारियों की विद्यमानता के कारण एक बढ़ी भारी सामाजिक समस्या उत्पन्न हो गई है। विवाह के अभाव में तथा विवाह जिस मुख एवं जिस पूर्णता का कारण है उस अपत्य सुख के अभाव में इन कुमारिकाओं का जीवन अस्थिर तथा आन्त हो गया है। सामाजिक जीवन में बहुत बड़े पैमाने पर असमाधान का रहना समाज के लिए एक मारी खतरे की बात हो जाती है। प्राप्त परिस्थिति को दैवायत्त वस्तु कहकर सन्तोष मानने के लिए कहने वाला बेदान्त उस देश में नहीं है। दैववाद के कारण मनुष्य प्रयत्न-पराहमुख हो जाता है यह सत्य है, तथापि जीवन के किन्ही चेत्रों में संचार करने के लिए उसे खुला छोड़ दिया जाय तो समाज का कोई बहुत बड़ा अनर्थ हो

जायगा ऐसी बात नहीं है।

एतादृश दैववाद पर ब्रात्यान्तिक विश्वास रखकर धीरगम्भीर भाव से ब्रायने जीवन-पथ का ब्रानुक्रमण करने वाली इस भगिनी की ब्रोर जब मैं देखता हू, मेरा मन नम्न हो उठता है। हर रोज ठीक ब्राठ-नौ बजे के करीब सबेरे वह ब्रायने मकान के छज्जे पर ब्राजाती है ब्रोर विवाह-सरकार के समय गौरीहर नामक विधि के लिए बैठते समय नववधू के मन मे जो उत्सुकता, जो मीठी वेचैनी उत्पन्न होती है, बिलकुल उसी उत्सुकता से वह उस बुद्ध हरिजन का मार्ग देखा करती है। सूर्य कभी उदित होना मूल जाय, पर वह ब्रायने पूना-निवास के दिनों मे ब्रायने छुज्जे पर ब्राना कभी नहीं मुलेगी।

वह हरिजन रास्ते पर चलता जाता है श्रीर हर एक मिनट के पश्चात् मराठी मे "वाजदुपालगा विगायचा श्राहे का वाज-पालगा" इस प्रकार चिल्लाता हुश्रा जाता है। दृष्टिपथ मे श्राने से लेकर दृष्टिपथ से निकल जाने तक श्रानिमेघ नेत्रों से उस वृद्ध को देखने वाली, श्रुतिपथ मे श्राने से लेकर श्रुतिपथ से बाहर जाने तक उसके उन शब्दों को कान लगाकर मुनते हुए खडी होने वाली इस भगिनी का दृश्य में श्रानेक वर्षों से देखता चला श्रा रहा हूं। में समभता हू यदि किसी दिन ऐसा घटित न हो तो उस दिन निश्चय ही सारा दिन उसे सूना-सूना-सा तथा दुर्दिन का-सा होता होगा। जख्म को श्रागर थोडा धक्का लगता जाय तो दुःख होता है, पर उसके साथ ही थोडा भला भी महसूस होता है। हरिजन के शब्द कान में पडते ही उसके मन में कौन-सी भावना उत्पन्न होती होगी ! किस प्रकार के विचार श्राने लगते होगे ! दुःख के, मत्सर के, श्रयस्तोघ के, श्रयंवा श्रन्य ही किसी प्रकार के ! पडौस के बच्चे जब उसके पास श्राते होगे श्रीर प्रसग-वशात् कभी उनके मुंह से "श्राई" (मां) शब्द निकलता होगा, तब उसे क्या प्रतीत होता होगा ? उसके मन मे यह न श्राता होगा कि कोई उसे भी इसी शब्द से सम्बोधित करने वाला हो ?

मन की भावनाश्चों को श्राज नहीं तो कल उचित शब्द मिल जायगा। कम-से-कम टेढ़े-मेढ़े ही क्यों न हो, किसी-न-किसी प्रकार के शब्दों में वे व्यक्त किये जा सकेंगे, पर इस बहन के लिए जीवन का स्वरूप ही उलटा है। उसके लिए शब्द विद्यमान है, पर उसमें श्चर्थ नहीं है। श्रपत्यहीन जीवन का श्रामित्राय हुश्चा श्चर्थ हीन शब्द। श्चाशय शून्य ध्विन तथा स्वर्राहत सगीत। वच्चे है, पर वह मां शब्द, जो कीमिया की भाति दुःख को सुख बना सकता है, बीरान मुल्क को गुलजार कर सकता है, मिलनता का प्रचालन करके मागल्ल का निर्माण कर सकता है, उच्चारित नहीं हो पाता, इसे कितना बड़ा दुर्माग्य कहू १ जब उसकी इस न्यूनता को प्रदर्शित करने वाले विचार उसके मन मे श्चाकर उसे बुरी तरह विपरण कर डालते होगे, उस समय वह उन उद्भ्यमान भावनाश्चों को बिहर्निंगम का मार्ग किस प्रकार करती होगी १ भावी श्चाशा का प्रलोभन देकर या किसी श्चन्य ही मार्ग से १ इस समय भी श्चाशा उसके मन मे श्चवशिष्ट रही हो तो कहना होगा कि श्चाशा ने श्चनुभव को परास्त कर दिया। नहीं मुभे ऐसा प्रतीत नहीं होता।

जिस मानसिक सन्तोषपूर्ण वृत्ति से वह दिन भर व्यवहार करती है, दुनिया के व्यवहारों वी स्रोर वह देखा करती है, उससे यही प्रतीत होता है कि उसने स्रपनी दृष्टि स्रिधिक सामाजिक तथा स्रिधिक प्रगल्भ बना डाली है, एवं स्रपनी वैयक्तिक न्यूनता को नास्तिप्रद कर डाला है। स्रपने जीवन को व्यापक बनाकर उसने स्रपने स्रापको निर्दोष तथा स्रिधिक मनोज्ञ -बनाया है, बारही के दिन उपस्थित रहने में उसे जितना स्रानन्द स्राता है, उतना स्रन्य किसी भी बात में नहीं स्राता। बच्चे के नामकरण-सस्कार के दिन

प्रस्ता को जो भेंट दी जाती है उससे अधिक उदात्त एवं पुरायकारक दान उसके लिए अन्य नहीं है। अपने मुहल्ले की सब माताओं के भीतर जिसने श्रपने मातृत्व का साच्चात्कार किया, उसे यदि हम जगन्माता का पद प्रदान करे तो श्रयोग्य न होगा। इतना मत्सरहीन, इतना सन्तोषपूर्ण जीवन गान्धारी को भी नसीव न हुआ होगा। स्त्रीर इस सब बात का निमित्त सीधी-सादी प्रतीत होने वाली पर अनेक जीवो पर अनेक प्रकार से प्रभाव डालने वाली हमारे हरिजन के मुंह से निकलने वाली 'पालगा विगायचा श्राहे का बाजपालगा ?" यह पुकार ही है न ?

नामदीं को दुनिया जीने नहीं देती

4 मिन्दों को दुनिया जीने नहीं देती" ये शब्द ज्योही उस किन के मुद्द से निकले त्योही सहस्रावधि श्रोतृ-कंठों से भी वे शब्द उतने ही जोर से ऋौर जोश से बहिर्गत हुए । हृदय के उल्लास तथा चित्त की तन्मयता ने उस ध्वनि को शीघ्र ही अभिनय में परिगात कर दिया । ब्रावेश मे ब्राकर सैंकडो व्यक्ति ब्रापने-ब्रापने स्थान पर उठ खड़े हुए श्रीर हाथ के श्रिभिनय से उक्त पक्ति की भावना की तीवता को मुद्धी तान-तानकर व्यक्त करने लगे। स्रगर कोई बहरा स्रादमी वहाँ बैठा होता तो उसे भी उसके ऋर्थ का ज्ञान हो गया होता। 'जीने नहीं देती, हा, हां जीने नहीं देती' इसे टेक बनाकर वह विशाल जनसागर गर्जना कर रहा था। नीचे श्रीर ऊपर किये जाने वाले हाथो को देखकर सचमुच ही समुद्र की लहरों का भास होता था। रात्रि के उस प्रशात प्रहर मे भेलम घाटी के कोने-कोने को स्पर्श कर बहने वाला पवन इस ध्वनि को द्रुतगित से किलमर्ग से परे के शत्रु देश मे पहुँचाकर मानी शत्रुत्रों के

हृदयों को विदीर्ग करने के लिए ब्राकुल हो रहा था। मध्य-रात्रि व्यतीतः हो जुकी थी। त्र्याकाश में शुक्लपच की तृतीया का चांद द्वाप्त हो जुका था. मानो उस मजलिस मे प्रतिच्चण त्रभिनव तैजिस्वता से दीप्त होने वाले वातावरण को देखकर उसने श्रापना मुंह ही छिपा लिया हो। ऊपर नील आकाश में सैकड़ो तारे आंखें खोल-खोलकर नीचे की सृष्टि के इस ऋपूर्व उत्साह का अवलोकन कर रहे थे। चाद इन तारो का साथ छोडकर शायद इसलिए भी चला गया था कि उसे पाकिस्तानी गुप्तचर मानकर लोग कही उस पर इमला न कर बैठे। वह रात उस प्रदेश के इतिहास मे निस्संदेह स्रभूतपूर्व थी। वे दूरस्थ पर्वत भी जो इतिहास के स्रारम्भ से ही कालचक का भैरव नर्त्तन ऋपनी ऋाखों से देखते ऋाये हैं, यह समभ कर कि कदाचित् यहाँ कोई नई बात हो रही है, घटनास्थल के श्रीर भी समीप त्राये हुए प्रतीत होते थे। यह मुशायरा काशमीर की उस सुहावनी घाटी मे हो रहा था जहाँ निसर्ग ने ऋपना सारा सौदर्य खले हाथो बखेर रखा है। जिस प्रकार मकान मालिक किरायेदारों के काम में श्राने वाले मकानो का निर्माण करने के पश्चात स्वयं अपने रहने के लिए एक शानदार मकान बनवाता है, उसी प्रकार सुजनकार्य की समाप्ति पर परिश्रांत विधाता ने सम्भवतः विश्राति के ऋर्थ इस रम्य घाटी का निर्माण किया होगा ।

हा, तो श्रोतागण वार-वार हाथों को नचा-कुदाकर श्रावेश में कह रहे थे—''दुनिया जीने नहीं देती' 'जीने नहीं देती" वह किव भी बार-वार उन्हीं पदों को पढ़कर लोगों को प्रेरित कर रहा था। सुदृढ शरीर, शुभ्र खादी के कपड़े, सिर पर ठीक बीचों-बीच बाल उड़े हुए श्रोर चारो श्रोर के बाल बढ़े हुए लम्बे श्रोर घुंघराले। उन बालों की रचना को देखकर इच्छा होती थी कि उसकी उपमा उस पर्वत से दी जाय, जिसके शिखर तो बर्फ से लदे हुए होते है किन्तु जिसके नीचे का भाग लम्बे-लम्बे घने बृत्तों से ब्राच्छन्न होता है। उस कवि का भाल-प्रदेश भव्य ब्रीर उसका रोब-दाब सहज ही किसी भी व्यक्ति के हृदय पर श्रपनी छाप बैठा देने वाला था। ''समुद्रो को धो डालो'', ''त्र्याकाश को लपेट डालो''. 'पहाडो को तोड-फोड डालो'', 'फूलो को लेना है तो दाटो को मसल दो।" "काटो को मसल दो" श्रोता लोग इस पिक को भी आवेश के साथ दुहराने लगे श्रौर एक श्रजीब मस्ती के साथ भूमने लगे ; कृष्णा के बारे में सुना है कि उसने ऋपनी मुरली की तान से गोपियों की मुख करके उनकी देह की सुधबुध भुला दी थी। वैसा ही कुछ यहा भी था। श्रोतात्रों में केवल साधारण कोटि के लोग हो, सो बात नहीं थी; प्रत्युत उनमे जहा एक त्रोर ऐसे लोग थे, जो भावनात्रों के लिए त्रपने प्राची तक की बिल चढाने को तत्पर रहते थे, वहाँ दूसरी स्रोर ऐसे भी लोग थे जो व्यवहार-प्रवीग एव पहले दर्जे के राजनीतिज्ञ थे। फिर भी उस समय वहाँ शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जो उस उत्साह के महासागर में इवने से बचा हो। यह प्रभावोत्पादक दृश्य इस बात की साची था कि शब्द की शक्ति कितनी प्रवल होती है।

मुशायरे का यह कार्यक्रम काश्मीर परिषद् के दूसरे दिन का कार्यक्रम समाप्त हो जाने के बाद रखा गया था और आरम्भ में जिस पिक्त का उल्लेख किया गया है उसके गायक उर्दू के विख्यात किव 'जोश' थे। उनका नाम यथार्थ ही था। यह किसी सामान्य मुशायरे का हश्य नहीं था और सुफे तो इस बात की कल्पना तक नहीं थी कि मुफे यह मुशायरा देखने को मिलेगा।

१५ सितम्बर को शेरे-काश्मीर शेख ग्रब्दुल्ला ने काश्मीर-परिषद् के लिए ग्रामंत्रण दिया था तथा काश्मीर विश्वविद्यालय के

प्रथम दीत्तान्त समारम्भ के समय उपस्थित रहने की प्रार्थना की थी। मैं इन्कार करने का विचार ही कर रहा था कि इसी बीच पडित जवाहरलाल नेहरू ने पूछा—''काश्मीर देखा है ?'' मैने कहा -- नहीं।'' इस पर वह बोले—''चलो।'' फलतः मैने भी चलने का निश्चय किया।

कल्ह्या कविकृत "राजत गिर्णा" नामक काव्य मैंने थोडा-सा पढा था। काश्मीर की यात्रा के वर्णन भी मेरी दृष्टि मे त्र्याये थे। काश्मीर के सौन्दर्य के सम्बन्ध मे बहुत-सी बाते सुन रखी थी। शेख अब्दुल्ला श्रौर काश्मीर के ब्रान्दोलन के बारे में गत १५ वर्षों से बहत-कुछ पता था श्रीर गत दो वर्षों से तो काश्मीर के सवाल के साथ भारत सरकार के एक मन्त्री के नाते सम्बन्ध ऋधिक बनिष्ठ हो चुका था । ऋनेक दृष्टियों से इस योगायोग की अनुकलता को देखकर आनन्द प्रतीत हुआ और मैं मन-ही-मन काश्मीर के सम्बन्ध मे श्रानेक प्रकार की कल्पनाए करने लगा। मैने ऋनुभवी यात्रियों से ऋावश्यक जानकारी प्राप्त की ऋौर २४ सितम्बर की सुबह को एक फौजी हवाई जहाज मे बैठकर श्रीनगर की स्रोर प्रस्थान किया। पहले पजाब, फिर रावी श्रीर फिर जम्मू तथा बानिहाल दर्रे के ऊपर से होता हुन्रा हमारा विमान तीर की तरह चलता गया। पठानकोट के समीप के प्रचंड पुल श्रीर वहां से जम्मू तक की नई सड़क को देखकर मुक्ते भारत के वास्तु-विशारदों के कर्त्त त्व के सम्बन्ध में ऋभिमान की श्रनुभृति हो रही थी। नाटककार भले ही नाटक का लेखक हो, किन्त नाटक का उत्तम रीति से ग्रामिनीत होना तो नट के ऊपर ही अवलंबित रहता है। तथापि दर्शको द्वारा नाटक की प्रशासा होने पर नाटककार को जितना श्रीभमान करने का श्रीधकार है, उतना ही श्रीभमान मुभी भी प्रतीत हुन्ना । विमान जब बानिहाल पर्वत पर पहुचा तब नीचे के दृश्य की रमणीयता ऋप्रतिम हो गई। पवतों के किट भाग मे ऋनेक घुमावदार रास्ते दीख रहे थे। उन्हे देखकर उस मंदार पर्वत का अनायास स्मरण् हो उठता था, जिसको ंथन दर्गड बनाकर वासुकि नाग की मथन रज्जुका द्वारा देवो श्रीर श्रासुरो ने श्रमृत प्राप्ति के लिए चीरसागर को मथा था श्रीर ऐसा प्रतीत होता था कि कदाचित् उसी मंथन मे से यह काश्मीर की नितान्त नयनरम्य मृष्टि निर्मित हुई है। श्रथवा, काश्मीर की घाटी के संरच्चण के लिए खड़ा किया गया यह दिच्चण दिक्पाल कही भाग न खड़ा हो इस मीति से उसे रस्सी मे बाध रखा गया हो, ऐसा च्यण-मर को प्रतीत हुआ। च्या-मर में मन मे ऐसी भी एक रम्य कल्पना आई कि हिन्दू संस्कृति के प्रति श्रादर बुद्ध उत्पन्न होने के कारण इस नागराज ने कुछ श्रस्तव्यस्त रूप में ही क्यों न हो, यज्ञोपवीत धारण करके हिन्दू संस्कृति के प्रति श्रपने श्रिममाव को जागरित रखा है।

काश्मीर के आकाश में

हमार विमान लगभग १२ हजार फुट की ऊंचाई पर से जा रहा था। यात्रा के आरम्भ के च्यां में जो उम्याता अनुभव हो रही थी वह अब नहीं रही थी श्रोर पर्याप्त शीत अनुभव होने लगा था। मेरी ही भांति अनेक यात्रियों का जी भी थोडा-सा मिचलाने सा लग गया था। इतने में नेहरूजी ने यू० डी० कोलोन की शीशी निकालकर उसे सारे जहाज में छिड़का। उसकी कुछ बूदें उन्होंने कइयों के रूमालों पर भी छिड़की, जिससे कुछ ताजीदगी महसूस हुई। अब हम काश्मीर की घाटी में प्रबृष्ट हो चुके थे। नीचे की जमीन सपाट नजर आती थी। ऊंचे-ऊचे वृद्धों से युक्त बड़े-बड़े उद्यान दृष्टिगत हो रहे थे। हरे-भरे खेत और उनके बीच में से चक्करदार मार्गों से होकर बहने वाली जलधाराएं दिखाई दे रही थी। सवा नौ बजे के लगभग हमारा हवाई जहाज अीनगर से १४ मील की दूरी पर स्थित हवाई जहाज के अब्रु पर उतरा। १६४७ के अवन्त्वर महीने के

श्चन्त में इस स्थान से २ मील के फासले तक पाकिस्तानी लुटेरे श्चा पहुचे थे। यदि इस हवाई श्रट्डे पर हमारी भारतीय फीजे दो घरटे की भी देरी से उतरी होती तो श्चाज यह लेख लिखने का मौका ही न श्चाया होता।

श्रीनगर में भव्य खागत

हवाई ऋड़े पर उतरते ही स्वागत के लिए ऋाये हए युवराज कर्णिसह. काश्मीर के मुख्य ऋधिकारी एव नागरिक दिखाई दिये। नीचे उतरने पर उन सबसे परिचय कराया गया । परिचय के पश्चात हम सब की प्रभातफेरी श्रीनगर की दिशा में चल पड़ी। श्रीनगर के प्रवेश द्वार तक रास्ते मे स्थान-स्थान पर स्वागत-द्वार बने हुए थे। नेहरूजी की जीप के पीछे हमारी गाडी थी श्रौर उसमे मेरे सिवाय राजकुमारी तथा गोपाल खामी थे। स्वागतार्थ जब लोग इम पर फूल फेकते थे तो फूल के रज के साथ पृथ्वी की रज (भूल) भी इम पर बरस जाती थी। नेपालेश्वर के बारे मे ऐसी प्रसिद्धि है कि यदि वह भीचड़ उठाकर भी अपने माथे पर लगाले तो वह करत्रीमय हो जाता है। कुछ ऐसी ही कल्पना मेरे भी मन मे थी। मैं समभता था कि सारा काश्मीर केशरमय होगा ऋथवा वहा पहुचने पर कम-से-कम वैसी सुगन्ध का अनुभव तो अवश्य ही होगा । पर यह काव्य-कल्पना यहां की वस्तुस्थिति की तुला पर तोलने पर सर्वथा सारहीन सिद्ध हुई। राजकुमारी ने कहा—''यह क्या धूल है शु'' मैंने कहा—''मध्यम श्रेणी के लोगों के पारब्ध में तो यही बदा होता है। यदि हम श्रेष्ठ कोटि के नेता होते तो अग्रभाग में विराजित रहने से धूल हमारे हिस्से में न श्राती या यह तब सम्भव होता जब हम एकदम श्रन्त मे होते । यद्याप इस विनोद के कारण धूल को भुला दैना सम्भव नहीं था, तथापि इतनी बात अवश्य हुई कि किसी ने फिर इस विषय पर चर्चा नहीं की । प्रत्येक प्रवेश द्वार के पास 'हिन्दुस्तान जिदाबाद' 'नेहरू जिंदाबाद' 'शेरे काश्भीर जिदा-

बाद' के नारे लगाये जाते थे। थोडी देर में हमारा जुलूस नगर के प्रवेश द्वार पर त्रा पहुचा । फेलम नदी का पुल ही श्रीनगर का प्रवेश द्वार है। सारा श्रीनगर इस नदी के दोनो किनारो पर बसा हुन्ना है। ऋर्थात यो कहिये कि फेलम नदी इस नगर के मन्यभाग मे प्रार वाहिनी की तरह बहती है। सैकडो नौकाएं नदी मे तरंगित हो रही थी। पुल पर से होकर इमने नगर मे प्रवेश किया । यहा स्वागत-द्वार बहुत पास पास बने हुए थे। कहे हुए कपड़ो श्रीर गलीचो ही से सारे द्वार सुसज्जित किये गये थे। दोनो स्रोर दुकाने सजी हुई थी। मार्ग लोगो से खचाखच भरा हुस्रा था। परिषद के स्वयंसवक, काश्मीरी होमगार्डस तथा भारतीय फीज के सिपाही इन्तजाम मे लगे हुए थे। इस नगर मे लगभग पौन घटे तक हमारा जुलूस चलता रहा। थोडी ही देर मे हम 'चश्मेशाही' उद्यान मे पहुचे। यह किंचित् ऊंचाई पर बना हुआ है। यहा के भारने का पानी बहुत प्रसिद्ध है श्रीर ऐसा कहा जाता है कि जहागीर बादशाह के जमाने में यहां से पानी के घड़े प्रति दिन बादशाह और बेगमों के लिए लाहौर भेजे जाते थे। श्राज यहां एक श्रत्यन्त श्राधुनिक ढंग का श्रातिथि-ग्रह बना हन्ना है श्रीर इसके सामने श्रीनगर की शोभा मे वृद्धि करने वाली डल भील है। यहां हमे जलपान कराया गया।

दीचान्त समारम्भ

कुछ समय तक वहां की सुन्दर पुष्पवाटिका श्रो का श्रानन्द लेने के पश्चात् हम दी चान्त-समारोह में सम्मिलित होने के लिए निकले। मैं सम-भता हू कि खुले मैदान में होने वाला यह कदाचित् पहला ही दी चान्त समारम्म था। विश्वविद्यालय की स्थापना को श्रभी एक ही वर्ष हुश्रा था। वस्तुतः ऐसे काल में, जब कि चारो श्रोर तोपो की गड़गड़ाहट कान की भिक्तियां फाड़े डालती हो श्रोर एक प्रकार का रण संश्रम सर्वत्र मचा हुश्रा

हो. किसी नये विश्वविद्यालय की कल्पना तक हास्यास्पद प्रतीत हुई होती, तथापि ऋरण्यो, वनो मे से पलायन करते समय जैसे ऋकबर का जन्म हुऋा था ऋथवा शिवनेरी नामक स्थान पर सर्वत्र उथल-पुथल की दशा मे स्वराज्य संस्थापक शिव प्रभु का जन्म हुन्त्रा था उसी प्रकार श्रीनगर के इस विश्वविद्यालय की भी सृष्टि हुई थी। क्रान्ति के काल ही मे क्रान्ति शरक कल्पनात्रो का प्रसव होता है। काश्मीर का विश्वविद्यालय वास्त स्रथवा आदर्श की दृष्टि से भारत के अन्य विश्वविद्यालयों के सदृश नहीं है। वह वस्तुतः स्रभिनव कारमीर या 'नया कारमीर' रूपी स्रादर्श का पालना है। उसकी कल्पना केवल तीन ही सप्ताहों में प्रस्त हुई थी। सब प्रकार के ऋानुसगिक साधनों को जुटाकर एक वर्ष के भीतर यह विश्वविद्यालय इस स्थिति को पहुच गया कि बर्धान्त मे ३०० विद्यार्थी उत्तीर्ग होकर स्नातक बनने के लिए प्रस्तुत हो गये एवं उन्हे उपाधि प्रदान करने के लिए इत समारोह का त्र्यायोजन हुन्ना। एक सुन्दर त्रिभुजाकार शामियाना लगा हुआ था। सामने की हरी घास पर जनता बैठी हुई थी। चारो श्रोर गगनचुम्बी चिनार के बृचो की कतारे बाल-सूर्य के श्रातप से दर्शको का बचाव कर रही थी। प्रतिष्ठित ऋतिथियों में पंजाब तथा केन्द्रीय सरकार के कुंछ मंत्री भी थे। इमारे पहुँचने तक वहा सीनेटर का जुलूस तैयार हो चुका था। नेहरूजी गाडी से उतरते हुए बोले—"त्रोह, त्रपना गाऊन लाना भूल गया'' "पर भाषण भूलना तो सम्भव नही," मैंने कहा। पंडितजी ने कहा, ''हा यह तो सही है।'' इम ऋपनी जगहो पर बैठ गये श्रीर थोड़ी ही देर में जुलूस भी श्रा पहुचा। युवराज श्रीर नेहरूजी के भ्रागे शेख श्रब्दुल्ला तथा उपकुलपित थे। उनके पीछे, जोडी-जोड़ी मे सीनेटर एव प्रोफेसर लोग थे। इनमे हिन्दू , मुसलमान, बौद्ध सभी धर्मों के ऋनुयायी थे। स्नातको मे भी सभी धर्मों के लोग थे। पर स्मरण रहे

कि सब के सिरो का पहरावा एक ही था । सबने किंचित गुलाबी रग के फेंटे बाध रखे थे। काले चोलां श्रीर गुलाबी शिरः परिधानी का सन्दर समन्वय था। युवराज ने भाषरण दिया। काश्मीर समस्त जगत की संस्कृतियों का समन्वय है। वैदिक संस्कृति की गहनता, बौद्ध संस्कृति का नैतिक महत्व एवं इस्लामी सस्कृति का चैतन्य मिलकर काश्मीर की संस्कृति बनती है। एशिया महाद्वीप से त्र्याने वाले सभी बड़े-बडे रास्ते काश्मीर मे श्राकर मिलते हैं। काश्मीर जिस प्रकार प्राचीन काल से चली श्राने वाली वस्तु-विनिमय का केन्द्रीय पैठ रहा है उसी प्रकार वह सस्कृति-विनिमय की भी पैंठ है। नेहरूजी ने कहा — "भारत का तथा काश्मीर का इन गत दो वर्षों मे जो इतिहास रहा है उसे देखकर मुक्ते अभिमान होता है। इस प्रदेश मे बुद्धि के विलास श्रीर इस्तलाघव का सुन्दर मेल हुआ है। यहा के कला-कौशल ने तथा यहा के साहित्य ने विश्व को श्राश्चर्य-चिकत कर दिया है। यह विश्वविद्यालय दूसरो से भिन्न है। यहा के स्नातक श्रन्य स्नातको की भाति नहीं होंगे। नवीन काश्मीर के वे शिल्पकार है। नया काश्मीर एक ऐतिहासिक स्त्रान्दोलन है स्त्रीर वह भारत तथा समीपवर्ती ऋन्य देशों के इतिहास को एक प्रेरणा देने वाली वस्त बनेगा।" पंडितजी के भाषण मे गत स्मृतियो का उल्लेख श्राया। वर्तमान घटनात्रो का ऊहापोह उन्होने किया । भावी इतिहास के रेखाचित्र उन्होंने श्रिकित किये। सामने खड़े हुए चिनार के दरख्तो की ऊँचाई के साथ मानो उनका भाषण होड कर रहा था। नेहरूजी प्रवृत्ति से कवि. मनन से तत्त्वज्ञ, तथा विवेक से व्यवहारविद् हैं । स्त्रतः उनके भाषण का विमान किसी निर्धारित विमान-स्थल पर ही उतरेगा ऐसा श्रवसर नहीं कहा जा सकता।

जेब की परीचा

दीचांत समारंभ के पश्चात् पंडितजी को छोड़ इम सब भेलम नदी के तीर पर बने ऋतिथि-गृह में 'सरकारी ऋतिथि' के रूप मे पहुँचे। श्रपरान्ह में हमें नदी मार्ग से निकलने वाले जुलूस में सम्मिलित होने की सूचना दी गई। दोपहर के भाजन के पश्चात् जुलूस के समय तक क्या किया जाय इसका विचार मै कर ही रहा था कि रत्नामत्री सरदार बल्देवसिंह, उनके भाई. उनकी पत्नी श्रौर बच्चे मेरे पास श्राये श्रौर काश्मीर एम्पोरियम की श्रोर चलने के लिए कहने लगे। वहां जाने का श्रर्थ श्रपना सारा बदुत्रा खाली करना था। पर यह भी सत्य था कि दिल्ली लौटने पर सारी बाल-गोपाल-मंडली हमारे लिए क्या लाये, हमारे लिए क्या लाये यह कहकर पीछे पड़ जाती। त्रातः त्रामी मैं सोच ही मे था कि मोटर में बैठ कर काश्मीर एम्पोरियम पहुँच गया। सबसे पहले मैने केशर के बारे मे पूछताछ की । विचारशील वृत्ति के अनुरूप मैने मध्यम कोटि की केशर देने के लिए कहा। विक्रोता ने कहा— "काश्मीर में केशर एक ही कोटि का होता है।" उसने केशर दिखाया । जीवन मे पहली बार मैंने प्रत्यद्ध श्रनुभव किया कि श्रमली केशर कैसी होती है श्रीर उसकी सगन्ध कितनी मनमोहक होती है ! ग्राहक लोग मोह मे त्राकर त्र्याधक केशर खरीद सकें इस विचार से काश्मीर सरकार ने रुपये के पीछे एक ब्राना कमीशन घोषित कर रखा था। इम वहा भिन्न-भिन्न दालानो मे से होकर फिरे। लकड़ी पर खुदाई का काम, कागज का काम, शाल, गलीचे, चमडे के काम, सर्वत्र कला-कौशल का विकास दिखाई देता था। जेब की सम्पत्ति की समाप्ति तक खरीदारी हुई। व्यवस्थापक ने कहा-"श्रीर खरीदना हो तो खरीद लीजिए। पैसो भी चिंता न करें, दिल्ली जाकर भेज दीजिएगा।" प्रसंग बड़ा नाजुक था। मेरी ही जैसी ऋवस्था सरदार बल्दैवसिंह की भी

हो गई थी। अन्त में हम दोनों भत्पट कर एम्पोरियम से बाहर हो गये स्त्रीर हमारी प्रतिष्ठा तथा जेव की शेप राशि बची रही।

नौका-विहार

ठीक चार बजे हम वहा पहुँचे जहा ल नौका-जुलूस निकलने वाला था। तीन नौकाएं सजाई गई थी। पहली मे पिडतजी, युवराज और शेख अब्दुल्ला बैठे। नोका खेने वाले सफेद पायजामा, सफेद कोट, सिर पर गुलाबी रंग का फेटा ता तिरगे चापू लिए तैयार खंडे थे। दूसरी नौका मे मै, राजकुमारी तथा आयंगर बैठे। तीसरी नौका मे सेनापित, रच्चामश्री तथा अन्य फौजी अधिकारी बैठे। हमारे पार्श्व मे पुलिस वालो की नौकाएं थी और चारो तरफ जिधर देखो उधर छोटी-वडी नौकाए ही नौकाएं हिष्टात होती थी। साढे चार बजे का चरा हुआ जुलूस सवा छः बजे अपने सकल्पित स्थान पर रहुँचा। इन तीन-चार मील के प्रवास मे गगन नारो से गूज उठा था। पानी पर भी अगिणत स्वागत द्वार थे। प्रत्येक विद्यालय और महाविद्यालय के अलग-अलग स्वागत-द्वार खंडे किये गये थे। नदी के दोनो किनारो पर खंडे हुए श्वेत भवन नर-मुन्डो से निर्मित बुर्ज-से प्रतीत होते थे। काश्मीर मौन्दर्य का निलय है, यह केवल अचेतन सृष्टि ही नहीं, प्रत्युत चेतन सृष्टि को देखकर भी विदित होता था।

खिड़िकयों में से, छुज्जों पर से सैकड़ों स्त्रियों निर्निमेष दृष्टि से जुलूस को निहार रही थी। उनमें से कुछ तो वहाँ अस्तव्यस्त अवस्था में ही थी। कुछ अपने बच्चों को सुलाते-सुलाते उन्हें उसी अवस्था में साथ ले आई थी— तो कुछ प्याला भूलकर केवल तरतरी ही लेकर भाग आई मालूम पड़ती थीं। उन्हें देखकर रघुवंश में वर्णित अज महाराज के जुलूस की याद हो आई। अज महाराज को देखने आने की गड़बड़ी में 'न बबंध नीवी ससम्भ्रात् सा' वाली बात यहां भी अवश्य हुई होगी

ऐसी एक कल्पना मन का स्पर्श किये बिना न रही। स्थान-स्थान पर स्त्रियों के भुत्र विद्यमान थे श्रीर वे स्थान मुक्ते तो विकित-कुसुम कमल-वनो की भाति ही प्रतीत हुए । लगभग सत्तर वर्ष की उम्र के गोपाल स्वामी ने मुक्तसे पूछा--''दोनो तरफ मोजूद यह दशक-समुदाय त्र्यापने देखा ?'' मैंने कहा-- 'जैसे स्त्रापकी नजरों से नहीं बच सका वैसे मेरी नजरों से भी नहीं बच सकता।" एक जगह चादर में 'स्वागतम्' के अन्तरों में छेद बनाए हुए थे त्र्यौर उनमे केवल मिर बाहर निकाले बच्चे बैठे थे। उसे देखकर लगता था मानो इन कपाल-कमलो से ही 'खागतम्' शब्द लिख गया हो । डेढ घंटे तक नारो श्रौर जयघोषो के साथ हमारा प्रवास चालू रहा | तिरगे चप्पू एक साथ चलाये जा रहे थे जिससे ऐसा भास होता था मानो सादात् ऋप्तराएं ही भेलम नदी मे जल कीडा कर रही हो। "जमीन ो ने न पे की", "कारखाना मजदूरी का", "राज्य जनता का" इत्यादि त्र्यनेक वाक्य स्वागत-द्वारो पर लिखे हुए थे। काश्मीर के ज्ञात इतिहास मे यह तीसरा जुलूस है; पर इतने बड़े पैमाने का पहला ही है, ऐसा लोग कहते थे। भोलम ने अपने जन्मकाल से अब तक अपने वत्तःस्थल को विलोडित करने वाला इतना बड़ा जुलूस नहीं देखा था, इसीलिए उसका हृदय बल्लियो उछल रहा था। इस दृश्य को जी-भर कर देखने के लोभ में सूर्य भी शीघ्र श्रस्त नहीं हो रहा था। उसका यह ताप हमे बडा दुखदायी लग रहा था। पूरा एक घंटा बीत जाने पर भी जुलुस समाप्त होता नहीं दिखाई दिया। त्रागे-पीछे, इधर-उधर चारो तरफ नौकाए ही नौकाए नजर आती थी और जिस प्रकार पतंग दीये के ऊपर छूटने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार प्रत्येक नौका वाला नेहन्जी की नौका की स्रोर भत्या पड़ रहा था। "काका, स्रापको स्रभी एक घटा श्रीर इसमे बैठना पड़ेगा।" फ़िरोज़ (नेहरू के जामाता) ने कहा। मैंने

कहा—"यह निर्मल-नीरा भेलम, यह चारो श्रोर की जनता श्रीर यह रसमय वातावरण ऐसा ही बना रहने वाला हो तो एक घटा क्यो, युग-भर भी मैं बैठे रहने को तैयार हूं।" तथापि स्वप्नो की समाप्ति की भांति हमारे इस जुलूस की समाप्ति का काल भी श्रा गया। सवा छः बजे के करीब हम श्रपने संकल्पित स्थान पर पहुँच गये। वहा पास के एक छोटे से उद्यान मे हमारी चाय का प्रबन्ध था। गरम-गरम मसालेदार चाय को उदरस्थ कर इम समीप ही में विद्यमान परिगद्-मंडप में जा पहुँचे।

विराट् जनसमूह एकत्र था। सामने चिनार के बृद्धों पर विजली के दीपों की मालाए मनोहर त्राबृत्तियों में सजाई गई थीं। मंच पर भी विजली की जगमगाहट थी। त्रापनी सगठन चातुरी के लिए समस्त काश्मीर से वाहवाही पाने वाले गुलाम मुहम्मद बख्शी का भाषण हुत्रा, जिसे उन्होंने गिने-गिनाये तीन मिनटों में ही समाप्त किया। वह समय क्रीर प्रसंग को पहचान कर तदनुरूप व्यवहार करने में दच्च है। ऋतिथियों की वाहनव्यवस्था से लेकर भोजन-व्यवस्था तक उनका सारा प्रवन्ध, मुक्त जैसे क्रनेक राजा-महाराजान्नों का ऋतिथ्य स्वीकार किये हुए व्यक्ति को ऋत्युत्कृष्ट एवं ऋविस्मरणीय लगा।

काश्मीर का केहरी

शेख अरुदुल्ला के भाषण देने के लिये खड़े होते ही ''शेरे काश्मीर जिंदाबाद" का इतना प्रचंड घोष हुआ कि आकाशवाणी पर प्रसारित उसकी ध्विन से कराची शहर भी दहल उठा होगा। शेख अरुदुल्ला काश्मीर के पहाड़ों की भाति ऊँचे, वहा के पाम वृद्धों की भाति इकहरें बदन के तथा समस्त काश्मीर की सौदर्य-कीर्ति के अनुरूप रूप के हैं। उनकी लगन और उनके तत्वज्ञान में से अधिक प्रभावशाली कौन है, यह कहना सुगम नही। दिराष्ट्रवाद के प्रति उनका दें ष उनके काश्मीर के प्रेम

के जितना ही है। उनकी भाषा स्पष्ट एवं उनके विचार उदात्त हैं। कूट-नीतिज्ञता का त्रारोप मैं तो उन पर नहीं करूंगा। लोग इतने वक स्वभाव से क्यों व्यवहार करते हैं, यह उनके लिए एक पहेली है—ठीक वैसे ही जैसे वह स्वयं इतने सरल स्वभाव से क्यों व्यवहार करते हैं यह उनके भित्रों के लिए एक पहेली है। उनके शत्रुश्रों के लिये ये दोनो ही बातें एक श्रम्बूभे बुभौवल की भांति है। उनका विगत इतिहास, उनके द्वारा सहन किये गये कष्ट तथा श्रमेक बार कसौटी की कस पर खरा उतरा हुआ उनका राजकीय शील जो लोग श्रच्छी तरह जानते हैं वे ही उनकी व्यक्ति-मत्ता को समभ सकते हैं।

हमारी मोटर जब माल रोड पर से गुजर रही थी तो एक पुलिस चौकी के पास गोपाल स्वामी ने मुम्ते बताया—यही वह स्थान है, जहां शेख अब्दुल्ला को पकड़ने के पश्चात् मेरी मोटर पर बड़े-बड़े पत्थर बरसाये गये थे।" मैने कहा—"और यही वह स्थान है, जहां आज प्रात: आपके ऊपर फूल बरसाये गये, ऐतिहासिक न्याय से और कुरान में काफिरों के लिए लिखे गये न्याय से तो आप पर पत्थरों की ही वर्षा होनी चाहिए।" गोपाल स्वामी ने कहा—"गिरफ्तारी के बाद जो उपद्रव हुए उनके लिए अब्दुल्ला उत्तरदायी नहीं है। वह सची अहिसा के अनुयायी हैं।"

श्राभिप्राय यह कि शेख श्रब्दुल्ला क्रांतिकारी व्यक्ति हैं, किन्तु उनके श्रन्दर क्रांतिकारियों की सी एकांगी वृत्ति नहीं है। वह सुसलमान हैं, किन्तु उनमें कठमुल्लापन नहीं हैं। वह श्राज काश्मीर के नेता है पर जनता के साथ समरस होने का भाव उनसे दूर नहीं हुश्रा है। श्रपने भाषण में उन्होंने कहा—''हम केवल रह्मा, यातायात श्रौर परराष्ट्रीय सम्बन्ध के विषयों के लिए भारत के साथ संलग्न हुए हैं। श्रन्यथा काश्मीर, सर्वधर्मानुयायियों का काश्मीर, काश्मीरी जनता का काश्मीर, सर्वथा स्वयं

शासित रहेगा । हमारा निर्ण्य जल्दबाजी में किंवा लोभवश किया गया निर्ण्य नहीं है । पाकिस्तानी संस्कृति का पूरा श्रानुभव हम ले चुके है । हम भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा के पहरेदार है । निष्ठा हमारा वत है । जनता की सेवा हमारा धर्म है । गाधीजी की सीख हमारी मार्गदर्शक है । काश्मीर की पवित्र भूमि पर जबतक एक भी काश्मीरी जीवित है, तबतक हम किसी को श्राने नहीं देंगे । १६४७ के श्रक्त्व्यर में श्राक्रमण्कारियों के धावा बोलते ही हमारी सरकार हमें छोड़कर भाग गई । जनता ने तथा हमारे स्वयसेवको ने च्या-भर में सगठन करके राज्य का कारोबार श्रपने हाथ में ले लिया । भारत सरकार ने हमारी प्रार्थना सुनी, भारतीय सेना ने हमारा सरच्या करके हमें उपकृत किया । जिन हिंदू-मुसलमान शाहीदोंने काश्मीर के लिये देह त्याग किया उनकी स्मृति इस भेलम के प्रवाह की तरह श्रखड़ रहेगी। श्राज नया काश्मीर जन्म ग्रहण कर रहा है । उसके उत्कर्ष के लिए हम श्रयना तन, मन श्रीर धन समर्पित कर रहे है ।"

श्रब्दुल्ला के पश्चात् पिडत जी ने भाषण किया। श्राध घटे तक उन्होंने काश्मीर से सम्बन्ध रखने वाली घटनाश्रों का उल्लेख किया। इसके पश्चात् उनकी वाग्-नोका ने श्रन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के महासमुद्र मे प्रवेश किया। पाकिस्तान को सम्बोधित करते हुए उन्होंने धमकी, प्रार्थना, उपदेश, व्यपदेश श्रादि के क्रम से श्रपने वक्तव्य का प्रदर्शन किया। उनके भाषण मे श्रनेक बार "हिन्दुस्तान जिंदाबाद, "पिडत नेहरू जिंदा-बाद" के नारे बुलन्द किए जाते रहे।

भाषण् के बाद अगले दिन का कार्य-क्रम बताया गया और सूचना दी गई कि रात को दस बजे के बाद मुशायरा रखा गया है । परिषद के मडप से लौटते समय नेहरू जी ने मुशायरे मे अवश्य सम्मिलित होने का आप्राद्र किया। रात को कर्णमहल मे हमारा 'राजकीय' भोजन प्रबन्ध रहा।

राजकीय भोजन प्रबन्ध, हमने इस लिए कहा कि इसमें सम्मिलित होने के आमंत्रण-पत्र छुपे हुए थे और भोजन का स्थान राजमहल था। वैसे उस भोजन में और अन्यत्र कहीं भी प्राप्त होने वाले भोजन में कोई अन्तर नहीं था। उसी जगह नेहरू जी का काश्मीर यात्रा का चित्र-पट भी देखने को मिला। उस चित्र को देखने वालों में कुछ लामा लोग भी अपने विचित्र वेशमूषा में नज़र आये।

गुलमर्ग-यात्रा

काश्मीर मे स्राने के बाद काश्मीर के दर्शनीय स्थानो को देखे बिना जाना ग्रसभव था । यो तो समस्त काश्मीर ही ग्रपने सौन्दर्य के लिए लब्ध-प्रतिष्ठित है । उसमें भी श्रीनगर ग्रौर उसमें गुलमर्ग. शालीमार, निशात तथा अञ्छा-बल। जिस प्रकार शाकु तल के चौथे श्रक के श्लोक चत्रष्टय को पढ लेने से शाक तल का सार सर्वस्व प्रहणा हो जाता है वैसे ही मैने उक्त स्थानो को देखकर काश्मीर का सारांश ग्रहण करने का निश्चय किया । २५ तारीख की सुबह के ६॥ बजे हम गुलमर्ग की स्रोर जाने के लिए निकले । श्रीनगर के बाहर वाले मैदान में से होकर मोटर का रास्ता था। इस मैदान से एक मील की दरी पर सरदार बलदेवसिंह ने हमे वह स्थान दिखाया जहा तक शत्र स्था पहुँचा था। वह शस्ता बारामूला की स्त्रोर जाता है तथा उसके दोनो तरफ ऊंचे-ऊंचे दरस्त है। कुछ फासला तय करने पर हम दिचाण की श्रोर मुडे। रास्ते मे जहाँ कोई गाव मिलता वही हम ठहर जाते श्रौर भिन्न-भिन्न लोगो से ऋनेक प्रकार के प्रश्न पूछते। लगभग डेट घंटे में हम तगमर्ग पहुचे । वहा से गुलमर्ग की चढ़ाई शुरू होती है । मेरा मन उस चार मील के रास्ते को घोडे पर सवार होकर तय करने का था। परन्तु हमारे लिए जीप गाड़ियां तैयार थी । जिस रास्ते पर चाहे उस पर

जिस प्रदेश में से चाहे उसमे से श्रीर जिस चढ़ाई या उतार पर चाहें उस पर से जाने वाला यह जीप-वाहन भी एक विलक्षण वस्तु है। श्रहमदनगर की श्रोर एक कहावत है कि ''प्याज जैसा व्यंजन नहीं, मानभाव जैसी पत्नी नहीं, श्रीर गदहें जैसा वाहन नहीं।'' प्याज कच्ची पक्की दोनों हालतों में, हर श्रंग से उपयोग में श्राती हैं। मानभाव की पत्नी के लिए चोली, चूडी तथा तेल का खच नहीं श्रीर गदहें के लिए उससे भरपूर काम लेने के बाद भी चारे की चिन्ता करने की श्रावश्यकता नहीं, किसी घूरे पर उसे छोड़ दिया जाय तो उतना ही उसके लिए पर्याप्त हो जाता है। इस कहावत में मैं गदहें के स्थान में जीप शब्द रख देना ठीक समभता हूं क्योंकि इस वाहन के चलाने के लिए किसी रस्ते की ही जल्रत नहीं रहती। श्रधर में वह नहीं चल सकता, इतनी ही कभी उसमें रह गई है। बिलकुल दम फुला देने वाली काठियावाड़ी पगड़ी की भाति घुमावदार रास्तों वाली वह चार मील की चढ़ाई हमारी जीप ने लगभग १५ मिनट में पूरी कर दी।

गुलमर्ग दस हज़ार फुट की ऊंचाई पर है। एक द्रोण की तरह अध-मील क्यास का एक गोलाकृति प्रदेश है तथा चारो ओर से पर्वतो से घिरा हुआ है। घने जगल में से आते समय तो सूर्य का दर्शन भी दुर्लम हो जाता था। इस द्रोण भाग में अल्हाद मारने वाली ठरडी हवा वह रही थी। थोडी-थोडी दूर पर लकडी की कुछ टूटी-फूटी-सी भोपडिया नजर आती थी। कभी-कदास कोई आदमी आता-जाता दीख जाता था। हमारे साथ का कैंप्टन हमे परली ओर मिलिटरी की भोपडी के पास ले गया। वहा से एक मील के फासले पर किलमर्ग का दर्श था और उसके ऊपर चनाब नदी की घाटी थी। किलमर्ग की ओर जाने की इच्छा थी पर जीप का वहाँ तक जाना सम्भव नहीं था। टट्टू पर जाने से समय पर

लौटना कठिन हो जाता: श्रतः विचार स्थगित करना पड़ा । वहाँ पर रहने वाले सैनिको ने हमारी त्राव-भगत की। बलदेवसिंह ने बडी त्रात्मीयता से उनसे कुशल-मगल पूछा । श्राक्रमणकारियों ने वहा के जिस 'निहू-होटल' को तोड-फोड़ डाला था वह हमें दिखाया गया। जिस नृत्य-गृह मे सौदर्य-लतिकाए नाचा करती थी वहा उसके दग्ध श्रंगो को देखकर शैतान के नंगे नाच का स्पष्ट भान हो रहा था । रेसकोर्स को नष्ट कर दिया गया था । जो कुछ वे ले जा सकते थे सब उठा ले गए थे, जो बड़े-बड़े गलीचे वे पूरे-के-पूरे नहीं ले जा सकते थे उन्हें दुकड़े-ठुकड़े करके ले गये। दवाखाने की बोतलों में तेजाब भरा हुन्ना था जिसे उन्होंने सिर न्त्रीर मुंह पर तेल समभक्तर मल लिया था। फलतः उनके चेहरे विरूप हो गये थे, ऐसा हमे बताया गया था। बारामूला ऋौर गुलमर्ग की लूट का सामान वे लोग लगभग साढ़े चार सौ ट्को मे भर कर ले गये थे। यदि वे इस लूट मे श्रपना समय खर्च न कर देते तो श्राज काश्मीर का सवाल हिन्दुस्तान के लिए तो समाप्त हो चुका होता । इन लोगो ने ऋत्याचार करते समय उम्र नहीं देखी, जाति नहीं देखी, धर्म नहीं देखा । उन्हें पशु कहना वेचारे पशुत्रों का भी श्रपमान करना है।

शाही शेरवानी

श्रातताइयों ने शेख श्रब्दुल्ला के दाहिने हाथ "शेरबानी" को पकड़ कर बारामूला गांव के चौराहे पर खड़ा करके श्रमेक प्रकार की यातनाश्रों से पीडित करके मार डाला । उनसे बार-बार कहा गया था—"श्रगर त् मुंह से श्रब्दुल्ला मुर्दाबाद" कह दे तो हम छोड़ देगे।" पर श्राखिर दम तक उन्होंने वह नहीं माना। श्राज शेरबानी की स्मृति काश्मीर के लिए एक प्रेरणा मन्त्र बन गई है। श्रातताइयों की नृशसापूर्ण कथाएं सुनकर मन को शात रख सकना श्रसम्भव हो जाता है। वहां के सैनिकों ने हमे भिन्न-

भिन्न तेत्रों की घटनात्रों से भी परिचित कराया । वहां के प्रमुख ऋधिकारी एक सिख थे जो पूना के न्यू इंग्लिश स्कूल के विद्यार्थी भी रह चुके थे। जीप का डाइवर मद्रासी था। जमादार मेजर कोल्हापुर के शिवाजी राव भोसिले नाम के सज्जन थे। एक श्रीर श्रिधिकारी राजपूत थे। वे लोग विविध प्रातों से ऋाये हुए थे. फिर भी देश-प्रेम से प्रेरित होकर वे उसकी रचार्थ सगठित होकर काम करते थे। उनका उत्साह दुर्दमनीय था। वे उस 'चारा' की प्रतीक्ता मे थे, जब वे दुश्मन को पूरी तरह नेस्तो-नाबुद करने में सफल हो सकेंगे। कड़ाके के जाड़े में श्रौर वर्फीली जगही पर उन्होंने जो पौरुष प्रदर्शित किया है उसका वर्णन उनके प्रति लिखे गये ऐतिहासिक स्तृति-गीतो द्वारा ही किया जाना चाहिए। हमने उनके साथ चाय पी त्र्योर सबसे हाथ मिलाकर 'म वहा से विदा हुए, यद्यपि उस रम्य प्रदेश को छोड़ने की इच्छा नहीं हो रही थी। इतनी शांति स्रोर इतने सौदर्य के सानिध्य के कारण मन मे एक प्रकार का दिव्य वातावरण उत्पन्न हो रहा था। सचमुच तपश्चरण के लिए वह स्थान ऋत्यन्त ऋनुकूल था। पर तप करने देता कौन है ? अनेक मोह और अनेक प्रलोभनो से पूर्ण इस आधुनिक सृष्टि मे प्रल्हाद बनने जाये तो कदाचित विश्वामित्र ही बन जाना पडे । तात्पर्य यह कि कुछ विलच्चण से विचार उस स्थान को दैखकर मन मे त्राते थे। उनका समरण करने से एक प्रकार की ताजगी त्रानुभव होती है पर उन विचारा को ऋचर रूप प्रदान करना मेरी कला के तेत्र से बाहर की वस्त है। उस काल की मनःस्थिति को साहित्य की चित्र गुफाओं में लाना मेरे लिए क्या, साचात शारदा के लिए भी, ग्रसम्भव है। ग्रात्मा जिस प्रकार शब्दातीत है, तद्वत् उस समय का ख्रानन्द भी शब्दातीत है।

निशात और शालीमार की छवि

कुछ ही च्यों में इस तंगमर्ग के समीप आये और जीप में से उतरकर

मोटर मे बैठ श्रीनगर लौट श्राये । दोपहर को हमने जगद्विख्यात निशात श्रीर शालीमार देखा । जहागीर बादशाह द्वारा बनाये गये ये उद्यान चार शताब्दियों के बाद आज भी उतने ही सादर्ययुक्त और आह्वाददायक हैं। रस की तो यहा पराव गष्टा है । विलासी वृत्ति का सम्पूर्ण ग्रंथ यहा देखने को मिल जाता है। भूमिगत स्वर्ग कहकर उनका जो वर्णन किया गया है वह ऋष्रा पडता है। वे पुष्प-वाटिकाएं, वे हरियालिया, फव्वारे मे से उद्भूत होते हुए वे नीर तुषार, निशात उद्यान के सामने फैला हुआ विस्तीर्ण डल सरोवर, उसके पृष्ठभाग मे वह दडायमान उत्तुंग पर्वत, यह सब कुछ देखने पर यदि किसी को चर्ण-भर के लिए काल का विस्मरण होजाय तो इसमे आश्चर्य ही क्या ! विलास-प्रवीग सगलो की कलाकृतियो एवं शिल्प चमत्कृतियों के समज्ञ आधुनिक काल की सारी कलाकृतियां गद्य जैसी निष्प्रभ प्रतीत होती है। उस स्थान पर खडे होकर सामने के हिमाच्छादित शिखरो वाले पर्वतो को देखने से ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी चन्दनपंक चर्चित भाल वाले ऋषि को देख रहे हो। डल सरोवर मे नानाविध त्राकृतियो वाली नौकार्ये इधर-उधर फिर रही थी। क्या था वह हुएय ! इतिहास ने यदि उलटी गति ले ली होती तो काश्मीर का यह सारा पार्थिव सौदर्य समाप्त होगया होता !

साम्त का समय हुआ जा रहा था। अतः वहां से लगभग ३० मील की दूरी पर स्थित 'श्रच्छाबल' उद्यान मे जाना सम्भव नहीं था। एता-वता इम अपने श्रावासस्थान पर लौट आये। पस्ते भर मे हमने देखा कि इघर-उघर वृद्धो पर घोषणा वाक्य तथा चित्र टंगे हुए थे। यहा की सरकार की इस प्रचार-प्रणाली को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह मनुष्य स्वभाव की नाडियों को अच्छी तरह परखना जानती है। पाकिस्तान के निदर्शक चित्र कुछ ऐसे बने हुए थे कि उन्हें देखकर पुरुष गुस्से के

मारे तमतमा उठे, स्त्रियां घृणा के मारे नाक-भी सिकोड़ ले और छोटे बच्चे हर जाये। शेरे काश्मीर के चित्र तो हजारो की सख्या मे लगे हुए थे। 'काश्मीर एक है' 'हिंदू-मुसलमान एक है' 'काश्मीर उन्हीं का है', इत्यादि वाक्य लिखकर उनके अनुरूप ही भित्ति-पत्रकों की योजना की गई थी।

नाड़ी की पहिचान

भारतीय सेना द्वारा आक्रमण्कारियों के मार भगाये जाने के बाद काश्मीर के नेताओं ने जिस सगठन से और जिस द्वतगित ने जनता के मन पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, उसका इतिहास सचमुच हम सबके लिए एक प्रकाशस्तम्भ की तरह है। एक सर्वजन सुलभ लिपि का निर्माण करके उसका प्रचार आरग्भ किया है। काश्मीर राज्य के सार्वजनिक यातायात का राष्ट्रीयकरण करके किराया तथा गमना गमन का समय नियमित कर दिया गया है। जो धन्धे अशात वातावरण के कारण अस्तव्यस्त हो गये थे उनमे स्थिरता लाकर बड़े पैमाने के विक्रय और वितरण के काम को सरकार ने अपने हाथ में ले लिया है। यह प्रदेश इतना सुन्दर और इतना समृद्ध है, तो भी यहां की-सी गरीबी अन्यत्र द्वं दे नहीं मिलेगी। यह आत्म-विरोध वहा के नेताओं के चित्त को बेचन किये रखता था।

काश्मीर के मुसलमान

काश्मीर की घाटी में लगभग ६६ प्रतिशत जनता मुसलमान है श्रीर धार्मिक कटमुद्धापन भी उसमें खूब है, इतना कि हिन्दुश्रों के हाथ का भोजन भी वे लोग स्वीकार नहीं करते। भावना के वशवतीं होकर वह जनता पाकिस्तान के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर सकती है, इस बात को वहां के दीर्घदर्शी नेता श्रच्छी तरह समम्तते है। इस धार्मिक भावना पर श्रंकुश रखने के लिए लोगों के चित्त पर यह प्रभाव डालना श्रावश्यक हो जाता है कि वे ऐहिक सुविधाश्रो श्रीर स्वार्थों की श्रोर श्रधिक ध्यान दे तथा इस बात को मली प्रकार जान जाय कि केवल धार्मिक एकता में ही जीवन का समस्त हित निहित नहीं है। काश्मीर के बहुसंख्यक मुसलमान निवासियों के मन में इस्लाम के प्रति पूर्ण अनुराग की भावना है; तथापि पाकिस्तानी इस्लामी संस्कृति क्या वस्तु है उसका भी अनुभव उन्हें भली प्रकार हो चुका है। पाकिस्तान से आये हुए खुटेरे उनकी स्त्रियों को अपहरण करके ले गये थे। पुरुषों और बच्चों को खुले आम कत्ल करके उन्होंने अपना इस्लामी बंधुत्व अच्छी तरह प्रकट कर दिया था। खून, कत्ल और लूटमार के द्वारा उन्होंने सारे जग के समज्ञ यह प्रकट कर दिया था कि काश्मीर के प्रति उनके मन में कितना अनुराग है। इन सब कारणों से भारत के प्रति प्रेम की अपेन्ना पाकिस्तान के प्रति तिरस्कार की भावना ही आज की काश्मीरी जनता के मन में अधिक काम कर रही है।

आर्थिक पुनर्निमीण

इन अभावात्मक मावनात्रों के आधार पर ही संतोष मानकर बैठने से काम नहीं चल सकेगा। इसिलए काश्मीरी नेतात्रों ने आर्थिक कार्यक्रम द्वार। इस दृष्टिकोण को अधिक स्थायी स्वरूप देने का यत्न आरम्म किया है। लगभग ६० फीसदी से ज्यादा जनता खेती तथा तत्सम्बद्ध व्यवसायों पर जीवन निर्वाह करती है। जमीदारी-प्रथा के कारण वेचारे खेतिहरों को जो धूप, हवा, सर्दी और वर्फ मे रात-दिन कष्ट उठाकर काम करते हैं, खेती की उपज की सिर्फ डंठलें ही मिल पाती है। परमेश्वरी न्याय से नहीं प्रत्युत मानव-निर्मित कानूनों और प्रथाओं से यह सारी धांधली चल रही है। आज इसमें कातिकारी परिवर्तन लाया गया है। जमीदारों को अहिं-सात्मक छुटेरा करार देकर तदनुरूप शस्त्रों से उन्हें भी काश्मीर के आर्थिक खेत्र से मार कर भगा दिया गया है। खेती की कुल (बट्ट) पैदावार का तीन बटा चार भाग इल जोतने वाले का रखा गया है श्रोर बाकी का एक

चौथाई भाग प्रतिचारा चयाभिमुख जमीदारी की तथा प्रतिचारा लोक-प्रियता के त्राकाश में उदयाभिमुख सरकार की सुविधा के लिए रखा गया है । खेतिहरों मे अपनी जमीन की सेवा आस्था-पूर्वक करने की लगन बढ़ गई है, क्योंकि वे जान गये हैं कि जो भी पैदावार होगी वह उनकी श्रपनी ही होगी। इस जानकारी से उनकी मनोवाटिका भी दिन-ब-दिन पुष्पित होती चली जा रही है। इस वर्ष की फसल पिछले वर्षों से खुब बढकर होगी, ऐसा लोगों का ऋनुमान है। काश्मीर की इस स्थिति में तथा पाकिस्तानी जमींदारी प्रथा की स्थिति में क्या विरोध है यह चतर खेतिहर के ध्यान में त्राये बिना नहीं रहता । इसके सिवाय त्राकाशवाणी, पत्रकों. मित्तिपत्रको, व्याख्यानो श्रौर उत्सवो के द्वारा भी नवीन काश्मीर के नवीन व पुरातन जीवन का यथार्थ चित्र काश्मीरी जनता के समज्ञ प्रभाव-कारी रूप मे प्रस्तत किया जाता है। पुनश्च, काश्मीरी संस्कृति की सर्व धर्म सामन्वयवादिता, उसकी ऋलोकिकता, उसके ऋाकर्षण ऋादि की भी छाप काश्मीरी जनता के हृदयों पर बिठाने का प्रयत्न किया जाता है। यहां की सरकार की प्रचार प्रणाली सर्वथा अभिनव है। उसके ऊपर थोथी-सी छाया साम्यवादी प्रणाली की पडी हुई है. ऐसा कहें तो वह वस्त्रस्थितिविसंगत बात न होगी।

बच्चों के छोटे-मोटे खेलों के द्वारा भी वर्ग-विग्रह को बिंबित किया जाता है। रस्साकशी के खेल में एक झोर राजा लोग, नवाब, जमींदार, पूंजीपित, व्यापारी, दलाल झादि को एकत्र करके उनका नेतृत्व पिंडत झौर मौलाना लोगों को दिया जाता है झौर दूसरी झोर टांगे वालों, मोटर वालों, खेतिहरीं एवं मजदूरों की पार्टी बनाकर उनका नेतृत्व वर्गीय कल्पना से विरिहत विद्यार्थियों को दिया जाता है। इस प्रकार का एक खेल हमे दिखाया गया था। शिक्षा में, कीझा-होत्र में, उद्योग में, व्यापार में, खेती

मे, चरागाहों में, सर्वत्र इसी प्रकार का वातावरण उत्पन्न किया जाता है। यह है 'नया काश्मीर' का रूप! सवत्र पुनर्निर्माण एवं पुनरूथान ही की आशा उदित है तथा उस दिशा में पर्याप द्वतगति से प्रयास किया जा रहा है।

नया दृष्टि-विन्दु

यहां की स्त्रिया शनै: शनै: पर्दा छोड़ती जा रही हैं। 'वेबी शो' के श्रवसर पर हजारों मुसलमान स्त्रिया पर्दे की प्रथा का परित्याग करके उपस्थित थी । सौदर्य के साथ यदि स्वच्छता एव शुचिता का भी ध्यान रखा जाय तो ऋच्छा हो । छठे छमाही कभी एकाध दफा नहा लेने की प्रथा त्रभी कारमीरियों में से हटी नहीं है। फिर भी स्राज कारमीर मे परातन जीवन के किले की दीवारे भड़ाभड़ गिरती चली जा रही हैं। श्रानेक युगों से श्रांधकार वाले कोनो मे नया प्रकाश फैलता जा रहा है। मदालसा शनैः शनैः क्रियाशील होती जा रही है। शनैः शनैः वहां के स्त्री-पुरुष अपने कंघो पर पड़े हुए अभिनव काश्मीर के निर्माण के उत्तर-दायित्व को पहचान रहे हैं। परलोक मे धर्माचरण सब प्रकार के फल को प्राप्त करायेगा इस उधार कल्पना की ऋपेचा इस लोक में प्रस्थापित राज्यसंस्था हमारे जीवनों को ऋधिक सुखी बना सकेगी, यह नकद लैन-दैन की कल्पना स्वीकार करने की व्यवहार-दत्तता लोगों में स्नाती जा रही है। कुछ दिन पहले दिल्ली में एक काश्मीरी ब्यापारी माल बेचने के लिए आया था। उससे सारी परिस्थिति के बारे में सवाल करने पर उसने तत्काल उत्तर दिया कि 'रोजी कमाना है तो हिन्दुस्तान से मिलकर रहो श्रौर रोजा रखना है तो पाकिस्तान का साथ दो।' इस वाक्य का श्राशय स्पष्ट ही है। काश्मीर की यच्चयावत् प्रजा में सामान्यतया त्राज यही विचारधारा काम कर रही है।

श्राध्यात्मिक पृष्ठभृमि

नये काश्मीर की श्राध्यात्मिक पृष्ठभृमि सर्व-धर्म-समन्वय की है तथा श्राधिमौतिक कार्यक्षेत्र साम्यवादी विचारों से श्रोतप्रोत हो गया है। उनका मार्ग निश्चय का है। श्राशा उनके साथ है। पीछे मुडकर देखने की श्रादत उनमें न होने के कारण श्रागे के मार्ग को वे स्पष्ट देख रहे हैं। शोख साहब तथा उनके सहकारी सकटों में से गुजरने के कारण श्राज एक जबरदस्त संगठन के काम में लगे हुए हैं। शासन-सत्ता को हथियाने की भावना से प्रेरित राजनीति वहा नहीं है; श्रतः स्वार्थ प्रेरित नेतागिरी के पनपने के लिए वहा बहुत कम मौका है। वयक्तिक स्वार्थ के लिए देश के भाग्य के साथ खिलवाड करने वाले किवा श्रपनी प्रतिष्ठा की रज्ञा के लिए देश की विडम्बना एवं श्रंगविच्छेद करवाने वाले महाभागी श्रभी वहां नजर नहीं श्राते। यहां के मुसलमान कहते हैं कि इम पहले काश्मीरी हैं श्रोर श्राखीर में भी काश्मीरी ही हैं।

इस श्रमिनव काश्मीर के श्रान्दोलन का परिणाम भारत पर तथा पाकिस्तान पर क्या होता है यह श्रभी देखना है। पर इस नये धर्म में कार्य की प्रवल श्राकाच्चा एवं स्वार्थहीनता का श्रंश तो स्पष्ट है। सार्व-जिनक मतदान में काश्मीर किसे स्वीकार करेगा इसके बारे में श्राज तो किसी प्रकार का संदेह नहीं। जिस धर्म निरपेच्च वातावरण में काश्मीर की राजनीति प्रगति कर रही है वह एक उन्नत वातावरण है। उसकी उत्कटता श्रमुकरणीय है। मारतीय मुसलमान इसी भावना से भारत में भी बरताव रखेंगे तो श्रमिनव भारत भी जगत में एन श्रादर्श वस्तु सिद्ध होगा।

इन दो दिनों में खेतिहरों से लेकर बड़े अधिकारियों तक, कुली से लेकर साहूकार पर्यंत अनेक लोगों से मिलने-जुलने के मौके आये। अनेक के मनों का आमास भी हमें मिला। पौधा शनैः शनः ऊपर की ओर बद रहा है श्रौर उसी गित से वह जब भी पकबता जा रहा है। फिर भी यदि एक कुशल माली बनकर इस पौधे की यथोचित निगरानी न की गई तो कौन कह सकता है कि क्या होगा श्रोर क्या न होगा !

मशायरा

मेरे मन मे इस प्रकार की आशांका भले ही हो पर काश्मीरी जनता का त्र्यात्मविश्वास कितना है इसका थोडा सा त्रानुभव रात्रि के मुशायरे में प्राप्त हन्त्रा । १० बजे के करीब जब हम मुशायरे में शामिल होने के लिए मंडप में प्रविष्ट हुए तो ''जलाने का वक्त श्राया रे. जलाने का वक्त श्राया रे" ये शब्द उच्च स्वर में गाये जा रहे थे। रंगमच पर मध्य भाग में ऋध्यत्त 'डितजी बैठे हुए थे। उनके चारो स्त्रोर कविगण बैठे हुए थे। मुक्त जैसे ऋरसिक व्यक्ति को पात्रता न होते हुए भी पंडितजी के समीप का स्थान प्रदान किया गया । "युगों से हमें दारिद्रय में रखने वाली जमींदारी की प्रथा को 'जलाने का वक्त श्राया रे', हमें श्रज्ञान में रखने वाले जगत की संस्कृति से ऋलित रखने वाले मुल्ला-मौलवियों के धर्म को भेलम मे 'बहाने का वक्त स्राया रे', स्वार्थी साहकार एवं ऋत्याचारी राजसत्ता के पर्वतो से परिवेष्टित ऋपने जीवन को मुक्त करने के लिए 'इन पहाडों को रगड़ने का वक्त ऋ।या रे," इस प्रकार यह शायर गाता जा रहा था। कुछ देर तक तो मुभ्ने अच्छा लगा, पर जब कुछ जी उकताने लगा तो मैने ऋपने पास बैठे हुए खुर्शीदलाल से कहा—"ऋब तो सोने का वक्त आया रे।"

एक के बाद एक शायर ध्विन-विस्तारक के समीप आता । कोई पहाडी बोली मे कोई काश्मीरी भाषा में, कोई फारसी मे और कोई उदू में शायरी करके सुनाता था। पर उन सब की शायरी का विषय एक ही था और वह था रात्रि का हश्य। "देखो, देखो, आज 'नये काश्मीर' का

जन्म देखने के लिए यह चांद अपना मिलन मुख मेलम के स्कटिकिनर्मल पात्र में घोकर ऊपर आ रहा है। ये उगो के साची तारे इसके पालने पर के मालर बने हुए हैं। क्या कहते हो, तुम्हे इस घटना ना अर्थ बोध नहीं होता ! जरा अपने अतःकरण के कपाट खोलकर देखो। तुम्हें विरोध करने के कारण पश्चाताप होता हो तो आओ हमारा 'शेरे काश्मीर' उदार बुद्धि है। सद्वृत्ति पूर्वक रहो। लड़ाई मगड़े से किस का हित हुआ है ! यदि तुम यो रास्ते पर नहीं आओगे तो फिर 'शमशीर से काम लेना होगा।" शायर ने ऊचे स्वर मे शेर पढ़ा। हजारो ओताओं ने चिल्लाकर कहा, "शमशीर से काम लेना होगा।" शेख साहब बोले— 'इम तो अहिंसा के मानने वाले हैं," पर ओतागण दुहराते ही रहे, "डा हा, शमशीर से काम लेना होगा।"

जगन्नाथ त्राजाद ने एक नजम पढ़ी। १५ श्रगस्त १६४७ के दिन 'किस पर क्या गुजरी' इसका बहुत ही मार्मिक एव काव्यमय वर्णन उस में था। सादिक ने जब कहा— ''न हम खुदा के बंद यार बंदे हैं वतन के'' तो श्रब्दुल्ला साहब मोलवी सईद से बोले, देखिये, देखिये, ये क्या काफिरो की तरह कह रहे हैं। थोड़ी ही देर में श्रोतु-बृन्द की श्रोर से ''जोश, जोश'' की माग की गई। ये महानुभाव पांडत जी के पास ही वेठे हुए ये श्रोर च्या-च्या पर पान के बीड़े मुह में डालते जा रहे थे। सर्प-यज्ञ में जिस प्रकार एक के बाद दूसरा सर्प यज्ञकुराड में पड़ता जाता था उसी प्रकार एक के बाद एक पान का बीड़ा उनके मुख-कुराड में पड़ता जाता था उसी प्रकार एक के बाद एक पान का बीड़ा उनके मुख-कुराड में पड़ता जाता था उसी प्रकार एक के बाद एक पान का बीड़ा उनके मुख-कुराड में पड़ता जाता था उसी प्रकार एक के बाद एक पान का बीड़ा उनके मुख-कुराड में पड़ता जा रहा था। जब वे ध्वनित्तेपक के नजदीक श्राये श्रोर श्रपनी नजम कहने लगे तब इस 'तांबूल-वीटिका यज्ञ' की सफलता की प्रतीति सुभे हुई। मैं यह उम्मीद लगाये बैठा था कि इतने पान खा डालने के बाद धरगीनी'

की बहार स्त्राने के कारण 'लैला-मजनू' का काव्य निकलेगा। पर इस बातावरण में "साजन श्रीर बालम" के काव्य के लिये गुंजाइश नहीं थी। 'रंगीनी' की जगह 'रगदार' वृत्ति ही उनके काव्य से स्फुटित हो रही थी। ऐसा लगता था मानो काश्मीर का स्त्रीममान, निश्चय श्रीर उत्साह सन्देह रूप में हमारे सामने खड़ा हो। काश्मीर का वर्णन करते समय काश्मीर का स्वर्गनिर्माण कर चुकने के बाद जब उन्होंने कहा कि श्रव स्वर्ग बचा नहीं, तब मैंने देखा सारा श्रोतृ-समुदाय फण्धिर की भाति डोल रहा था श्रीर उनके काव्य के साथ पूर्ण तन्मय हो रहा था।

भारत के कंठाभरण की मणि

काश्मीर के स्वातंत्र्य का श्रमिरच्चण कोई सुगम वस्तु नही है। काश्मीर श्राज भारत के कंठाभरण की मिण है। काश्मीर भारत का भाल-प्रदेश है। यहां भाग्य-हीनता के लिये स्थान नहीं, शक्ति-हीन के लिये तो कर्ताई नहीं। ''नामदों को दुनिया जीने नहीं देती'' ज्यों ही ये शब्द जोश के मुंह से निकले सारे श्रोताश्रों की श्रयस्था वैसी ही हो गई जैसी कि हम ने इस लेख के श्रारम्भ में बताई है। ऐसा लगता था मानों कोई नाग श्रपना फन उठाकर फुफकार रहा हो। श्रशक्त प्राणी को इस जग में सुख नहीं ('दूबी वीक इज मिजरेबल') मिल्टन के इन शब्दों का मुक्ते उस समय समरण हो श्राया। उस खलमलाकर उमके हुए जनसागर को देखकर श्रमिनव काश्मीर श्रपने नव प्राप्त स्वातंत्र्य को किन निगाहों से देखता है श्रीर उसके लिये वह क्या कुछ करने के लिये तैयार है, इसका ठीक-ठीक परिज्ञान सुक्ते उस समय हुश्रा।

मुशायरा खत्म हो गया तथापि "जीने नहीं देती, जीने नहीं देती" ये शब्द मेरे कानो में गूंजते रहे। श्रगले दिन विमान में बैठ कर हम

श्रजी जीने नहीं देती।"

328

जब दिल्ली की श्रोर श्रा रहे थे, मुभ्ते थोडी-सी ऊघ श्रा गई। 'जीने नहीं

देती, जीने नहीं देती' ऐसा कहते हुए ही मैं जागा। तब फ़िरोज़ ने पूछा "काका क्या हुन्त्रा !" मैंने कहा—"नामदों को दुनिया जीने नहीं देती.

नामदीं को द्वनिया जीने नहीं बेती